☆ बात में बात [भाग–२]

☆ लेखक

श्री अशोक मुनि

☆ सम्पादक

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

☆ प्रकाशक

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
महावीर बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

☆ प्रथमावृत्ति

वि० सं० २०३७ 'दीपमालिका'
नवम्बर १९८०

☆ मुद्रक

श्रीचन्द सुराना के लिए
स्वस्तिक आर्ट प्रिंटर्स, आगरा-३

मूल्य : सिर्फ ५) रुपया मात्र

आभार दर्शन

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन मे निम्न महानुभावो ने उदारतापूर्वक अर्थ सहयोग प्रदान किया, तदर्थ हम आपकी उदारता के प्रशंसक है, साथ ही आपके अनुकरणीय सहयोग के प्रति सादर आभार व्यक्त करते हैं—

- श्रीमान अमृतलाल जी, विलासलाल जी गुगले
  पो० बार्शी (महाराष्ट्र)
- श्रीमान मागीलाल जी, कनकमल जी गाधी
  अहमदनगर (महाराष्ट्र)

आशा है, भविष्य में भी आपका सहयोग प्राप्त होता रहेगा।...

मन्त्री

अभयराज नाहर

जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय

ब्यावर

प्रकाशकीय

कविरत्न श्री अशोक मुनि जी महाराज का साहित्य जनता मे काफी लोकप्रिय हो रहा है। स्थान-स्थान से उनके साहित्य की माँग आती रहती है। इस साहित्य के स्वाध्याय से संस्कार-निर्माण और जीवन सुधार की प्रेरणा मिलती है।

प्रस्तुत पुस्तक मे मुनिपति चरित्र के रोचक कथानक को प्रकाशित किया जा रहा है। कथानक अति रोचक है साथ ही बहुत विशाल भी। इस कारण इसे दो भागो मे प्रकाशित कर रहे है। इसका सम्पादन भी सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्रीचन्द जी सुराना ने किया है। आशा है पाठक पूर्व पुस्तको की भाँति इसे भी पढकर लाभ प्राप्त करेंगे।

—अभयराज नाहर

रोचक तथा शिक्षाप्रद साहित्य

कविरत्न श्री अशोक मुनिजी महाराज एक प्रभावशाली वक्ता, ओजस्वी कवि तथा साहित्यशिल्पी है। आपका स्वभाव जितना मधुर है, वाणी उतनी ही ओजपूर्ण, आकर्षक तथा प्रभावशाली है। आपने धर्म-प्रचार, जन-सेवा, दया, दान, परोपकार के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये है। आपश्री ने जन-मन मे दया-दान-शील आदि भावो का सस्कार भरने की दृष्टि से अनेक कथा तथा उपन्यास पुस्तको का प्रयणन किया है जिनका सपादन श्रीचन्द सुराना 'सरस' ने किया है। सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

उपदेश साहित्य

- ☆ **दिवाकर वाणी** २) ☆ **दिवाकर देशना** २)
- ☆ **दिवाकर रश्मियाँ** २)५०

इन तीन पुस्तको मे जैन दिवाकर स्व० गुरुदेव श्री चौथमल जी म० की वाणी का विविध विषयो मे चयन कर अत्यत सुन्दर सार पूर्ण सकलन है। छोटे-छोटे सुभाषित व प्रवचनाश बड़े ही मार्मिक हैं।

कथा साहित्य

- ☆ **इनसे सीखें** २) ☆ **महकती मानवता** २)५०

इन दोनो पुस्तको मे जीवन के दया, सेवा, दान कर्तव्यपालन, प्रामाणिकता, आदि विविध उत्तम गुणो पर प्रकाश डालने वाले सच्चे कथानक, सस्मरण, ऐतिहासिक प्रसग तथा लघु-

कथाएँ सकलित है। दोनो ही पुस्तकें अत्यन्त रोचक तथा पठनीय हैं।

☆ **महाभारत की दिव्य मणियाँ** ५)

जैन एव हिन्दू महाभारत के चुने हुए प्रेरणाप्रद ४३ प्रसग।

☆ **रामायण के प्रेरक प्रसग** ३)

जैन एव हिन्दू रामायण के रोचक तथा शिक्षाप्रद ६० प्रसंग।

ऐतिहासिक उपन्यास

☆ **वीणा के स्वर** ४)

कौशाम्बीपति उदायन तथा सगीतसुन्दरी वासवदता के रोचक कथानक पर आधारित।

☆ **अधूरा स्वप्न** ४)

मगधपति अजातशत्रु कूणिक के महत्त्वाकाक्षाओ से प्रताडित जीवन का मार्मिक एव उद्‌बोधक अकन।

☆ **महायोगी** ५)

आर्य स्थूलभद्र एव कोशा के प्रेम, त्याग-विराग के विविध रसो से रसपूर्ण अत्यन्त रोचक प्रसगो का भावपूर्ण लेखन।

☆ **महानारी** ५)

महाभारत युग की अत्यन्त महत्वपूर्ण नारी सती द्रौपदी के अत्यन्त रोचक जीवन प्रसगो का हृदय द्रावक वर्णन।

पौराणिक उपन्यास

☆ **कसौटी** ३)

धैर्य की देवी दमयन्ती तथा राजा नल के उतार-चढाव पूर्ण जीवन सूत्रो का हृदय-स्पर्शी जोड।

☆ **हुआ सवेरा** ३)

चार प्रत्येक बुद्धो के वैराग्य-रस रजित कथा सूत्र का भाव प्रधान रजन ।

☆ **सुबह का भूला** २)

नटनागर आषाढभूति के कथा सूत्र की नई कल्पना और नये रंग मे प्रस्तुतीकरण ।

☆ **चलता चक्र** ६)

ऋषिदत्ता की पौराणिक कहानी को विविध घटनाओ मे गुम्फित करके नयी शैली मे लेखन ।

☆ **प्रवासी** [भाग १, २,] प्रत्येक ६)

श्रीचन्द्र केवली के पौराणिक चरित्र का रसीली शैली मे घटना क्रम के उतार-चढाव के साथ अकन । पूर्व पुण्यो के चमत्कार तथा दया के विशिष्ट प्रसगो का निदर्शन ।

☆ **एक दिन मे मुक्ति** २)

महान् ध्यानयोगी गजसुकुमाल के वैराग्य पूर्ण जीवन के साथ यदुवंश की घटनावलियो का चित्रण ।

☆ **जीवन दान** ४)

अहिंसा जीव-दया एव दान प्रधान चम्पक श्रेष्ठी एव मदन-कुमार की चरित्र कथाएँ ।

☆ **अमर ज्योति** ६)

जैन इतिहास प्रसिद्ध वैराग्यमूर्ति जम्बूकुमार का भावना प्रधान सवादात्मक चरित्र ।

☆ **बात मे बात** (भाग १, २) प्रत्येक ५)

कथाशैली मे नवीन प्रयोग प्रधान मुनिपति का कथोपकथन मे

गुम्फित १६ उपकथाओ से युक्त अति रोचक व शिक्षाप्रद कथा चरित्र ।

☆ जागरण ५)

जीवन को अन्धकार से प्रकाश, सुषुप्ति से जागरण की ओर ले जाने वाले तीन आदर्श चरित्र-मेतार्य, मेघ, आर्द्रक कुमार ।

☆

सम्पर्क करें

जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
महावीर बाजार, पो० ब्यावर (राज०)

अपनी बात

एक प्राचीन सूक्ति है —

ज्यों केले के पात मे, पात-पात मे पात ।
त्यो सज्जन की बात मे, बात-बात मे बात ॥

प्रस्तुत कथानक भी दो सज्जनो की बात-चीत के अन्दर गुथा हुआ एक लम्बा उपन्यास चरित्र है। इस चरित्र मे किसी एक ही पात्र का विशिष्ट चरित्र या वर्णन नही है, किन्तु दो पात्र—तपोधनी मणिपति मुनि तथा कुंचिक सेठ के बीच का सवाद-प्रधान कथात्मक चरित्र है। किसी भ्रातिवश कुंचिक सेठ तपस्वी मुनिश्री मणिपति को अपना धनहर्ता समझकर उन पर आरोप लगाता है, और मुनि अपनी निर्दोषता सिद्ध करते हुए सेठ का अज्ञान दूर करने का प्रयत्न करते हैं। इसी संवाद मे प्रथम सेठ कुंचिक मुनि पर कृतघ्नता व चोरी का आरोप लगाता हुआ सेचनक हाथी की कथा कहता है। उत्तर मे मुनि हार की कथा कहकर सेठ को समझाने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार उत्तर-प्रत्युत्तर मे ८-८ कथाएँ कही जाती हैं, कुल १६ कथाएँ इस चरित्र मे गुथी हुई हैं। एक प्राचीन श्लोक में इन कथाओ का सकेत इस प्रकार है—

हस्ती हार' सिंहो मेतार्य सुकुमारिका,
भद्रोक्षा गृहकोकिल सचिवा वटुकोऽपि च ।
नागदत्तो वर्द्धकिश्च चार भट्याथ गोपक
सिंही शीतार्दित हरि काष्टापि षोडशो मत ॥

प्राचीन चरित्र—मणिपति चरित्र का सबसे प्राचीन सस्कृत गद्य ग्रथ जम्बू कविकृत 'मणिपति चरित्र' है। इसका रचनाकाल वि० स० १००५ माना गया है।

इसके बाद प्राकृत मे उपाध्याय जिनपति के शिष्य हरिभद्र सूरि ने स० ११७२ मे मे मणिवइचरियं की रचना की।

प्राकृत का 'मणिवई' नाम धीरे-धीरे अपभ्रष्ट होकर 'मनिपति' बन गया और आज 'मुनिपति चरित' नाम से जैन कथा साहित्य मे विशेष प्रसिद्ध है।

मूल प्रेरणा—इस सम्पूर्ण कथानक मे अनेक युग के अनेक चरित है। मगधपति श्रेणिक, अभय, चेलना, आचार्य सुहस्ति आदि के ऐतिहासिक चरित भी है तो पचतन्त्र व कथासरित्सागर की शैली के पशु-पक्षियो से सम्बन्धित चरित भी है। इन सब मे विविध प्रकार की प्रेरणाएं हैं।

इस उपन्यास मे विहगम दृष्टि से देखने पर दो मुख्य प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं।

१ 'भ्राति' वहम या सदेहवश मनुष्य दूसरो को गलत समझ कर उनके विषय मे अनेक गलत धारणाएँ बना लेता है, इन गलत धारणाओ के कारण दूसरो पर आरोप लगाता है, और परस्पर कटुता, द्वेष का विष बढता जाता है।

२ कुछ मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थ, तात्कालिक लाभ के लोभ मे फँसकर दूसरो का अहित करने पर उतारू हो जाते हैं, यहाँ तक कि अपने उपकारी व निकटतम सम्बन्धियो को भी अपनी स्वार्थ की वेदी पर बलिदान करने पर उतारू हो जाते हैं।

उनके इस निकृष्ट चरित्र की निन्दा और विविध उदाहरणो द्वारा इस दोष से बचने की प्रेरणा इस उपन्यास की मूल प्रेरणा कही जाती है ।

मुख्यत मनुष्य के इस चरित्र को ही विविध उदाहरण व प्रसगो द्वारा यहाँ उद्घाटित किया गया है, और अन्त मे उसे गुणज्ञ, कृतज्ञ, परोपकार-परायण होने की उत्कृष्ट प्रेरणा दी गई है ।

जैन चरित उपन्यासो के आलेखन मे मुझे यह कथानक बड ही रोचक और शिक्षाप्रद लगा । अब तक के चरित्रो की शैली मे कुछ विलक्षण भी है । इसके कथानक मानवीय गुणो की प्रेरणा से स्वय बोलते से लगते हैं । इस कारण मैंने इसे उपन्याम शैली मे लिखा है । कथा सूत्र काफी लम्बा हो जाने से इसे दो खण्डो मे विभक्त कर दिया गया है ।

अन्य उपन्यासो की तरह ही इस 'बात मे बात' का सम्पादन मेरे स्नेही सहयोगी श्रीचन्दजी सुराना ने किया है । उनके सहयोग के प्रति मेरे मन मे बहुत ही आदरभाव है ।

मैं आशा करता हूँ कि पाठको को यह कथा शैली रुचिकर व प्रेरणादायी लगेगी ।

—अशोक मुनि

जैन स्थानक, नवीपैठ

अहमदनगर

बात में बात (२)

★ ★ ★

क्रम-क्रम से शिष्य-मुनि आचार्य सुहस्ति की वैयावृत्त्य कर रहे थे। अव तीसरा प्रहर भी वीत चला। तीसरे प्रहर की समाप्ति पर जोयण मुनि वैयावृत्त्य करके यक्षा-यतन मे आये तो 'निस्सही' के स्थान पर सहसा उनके मुख से 'अतिभय' शब्द निकल पडा। अभयकुमार ने मुनि से कहा—

"हे मुने! आपके गृहस्थ-जीवन में भी क्या कोई ऐसी घटना घटी है, जिसके स्मरण से आप रोमाचित होकर 'अतिभय' कह गये?

मुनि जोयण वोले—

"हाँ, ऐसी ही वात है। वह घटना अत्यन्त भय उत्पन्न करने वाली है। अव कोई भय नही, पर तव वहुत भय लगा। ससार के डर से ही मैंने दीक्षा ली थी। तुम भी उस अतिभय वाली घटना को सुनना चाहो तो सुनो अभयकुमार!"

स्वस्थ सुन्दर एक व्यक्ति का विवाह परम सुन्दरी स्त्री से हुआ। उस व्यक्ति की सुसराल उज्जयिनी मे थी। पहली बार वह अकेला ही अपनी पत्नी को लेने उज्जयिनी गया। उस व्यक्ति का नाम जोयण था।

जोयण रात मे उज्जयिनी पहुँचा। अभी वह नगरी से कुछ दूर ही था कि सोचने लगा—'अव तो नगर-द्वार भी वन्द हो गये होगे। रात मे कहाँ भटकूँगा। सुसराल में पत्नी ही मुझे अच्छी तरह पहचानती है। और सव तो देर मे तव पहचानेगे, जव मैं अपना परिचय दूँगा। दिन मे तो देखते ही पहचान लेते। अत अव तो सवेरे ही जाऊँगा।'

यह सोच जोयण, जहाँ था वही ठहर गया। जहाँ वह ठहरा वह स्थान मरघट था। जोयण लेटा था। कभी नीद आती और कभी आँख खुल जाती। रात के सन्नाटे मे पत्ता भी खडकता तो मालूम हो जाता।

जोयण की आँख खुल गई। उसने एक स्त्री के रोने की आवाज सुनी। जोयण उठकर बैठा हो गया और स्त्री का विलख-विलखकर रोना सुनने लगा। स्त्री के अरण्य-रोदन मे वडी करुणा थी। वह रो-रोकर यह भी कहती जाती थी—

"मेरे प्राणेश्वर! क्या मैं आज निराश ही लौटूगी। इस अरण्य मे मेरी सुनने वाला कोई नही है?"

जोयण उठकर बैठा हो गया। तलवार की मूठ को एक वार हाथ से छुआ कि वक्त पर तुझसे भी काम लूँगा। जोयण रुदन-स्वर का पीछा करते हुए स्त्री के पास पहुँच गया। वह एक पीपल के पेड के नीचे घुटनो पर सिर रखकर रो रही थी। जोयण ने पूछा—

"तुम्हे क्या कष्ट है? मै तुम्हारे क्या काम आ सकता हूँ?"

स्त्री ने जोयण की ओर देखा। फिर वोली—"तो

तुम मेरा काम करोगे ?" यह कहकर वह खडी हो गई और वोली—

"वह देखो। वहाँ मेरा पति शूली पर टँगा है। उज्जयिनी के अन्यायी राजा ने उस निरपराध को शूली दी है। मैं अपने पति को भोजन कराना चाहती हूँ। वहाँ तक पहुँच नही पाती। तुम्हारे कन्धो का सहारा चाहती हूँ।"

"यह भी कोई काम हुआ ?" जोयण ने कहा—"यह तो मामूली काम है। चलो, मैं तुम्हे ऊँचा करता हूँ।"

जोयण स्त्री के पीछे-पीछे चल दिया। सौ कदम चलने के वाद ही वह स्थान आ गया, जहाँ उस स्त्री का पति शूली पर टँगा था। जव जोयण ने यह कहा कि मेरे कधो पर पैर रखकर खडी हो जाओ तो दुखिया स्त्री वोली—

"पर मेरी एक शर्त है। तुम ऊपर नही देखोगे। क्योकि पति के मुँह मे कौर देते समय मुझे लज्जा आती है।"

"शर्त मजूर है।" जोयण ने कहा—"मुझे क्या जरूरत है, जो ऊपर देखूँ ?"

स्त्री जोयण के कधो पर चढ गई। उसे स्त्री द्वारा कड-कड चवाने की आवाज आई। फिर तो उसके ऊपर माँस के टुकडे भी गिरे। जोयण से रहा नही गया। उसने ऊपर देखा, तो क्या देखा कि वह शाकिनीरूपा स्त्री शूली चढे पुरुष का माँस काट-काटकर खा रही है। जोयण ने समझा कि यह कोई शाकिनी है। शाकिनी हो

तो इस तरह मास खाती हैं। अब तो जोयण ने आव देखा न ताव, शाकिनीरूप स्त्री अथवा स्त्रीरूप शाकिनी को नीचे पटक दिया और नगरी की ओर भागा।

वह स्त्री भी जोयण के पीछे भागी। नगर-द्वार के पास पहुँच जोयण हाँफने लगा। वहाँ कुछ और भी आदमी बैठे थे, सो जोयण को तसल्ली हो गई कि यहाँ के लोग मुझे बचा लेंगे। वैसे वह अब आयेगी भी नही। क्योकि शाकिनी का बल मरघट की सीमा तक ही होता है। लेकिन जोयण का यह अनुमान गलत निकला। वह स्त्री आयी और एक झपट्टा-सा मारकर चली गई। जोयण चीखा, क्योकि वह स्त्री जोयण की जाँघ का मास काट ले गई थी।

नगर-द्वार के पास जो बैठे थे, वे सब उसके पास इकट्ठे हो गये और उसकी कटी जाँघ को देखकर बोले—

"घबराओ नही। यह पास ही यहाँ की नगर-देवी का मन्दिर है। वहाँ जाकर उनसे विनती करके कहो। वे तुम्हारी जाँघ ठीक कर देंगी।"

जोयण देवी के मन्दिर मे गया और प्रतिमा के सामने नत होकर बोला—

"हे देवी! मेरा कष्ट हरण करो। तुम्हारे नगर के पास ही मैं अधमरा हो गया हूँ।"

देवी अपनी प्रतिमा मे से बोली—

"अपने अज्ञान के कारण तुम कष्ट पा गये। तुम इस नगर के नियम नही जानते। रात्रि मे यहाँ मेरे आदेश से शाकिनियाँ घूमा करती हैं। नागरिको से वे कुछ नही

कहती। पर परदेशी, जो भी उन्हे नगर-सीमा मे कही भी मिलता है, उसे मार देती है। आखिर उनका काम भी तो कैसे हो चले। पर तुम चिन्ता मत करो। मेरी प्रतिमा पर चढे फूल का स्पर्श अपने घाव से करो, अभी ठीक हो जाओगे।"

जोयण ने एक फूल लगाया। चमत्कार हो गया। उसका घाव ऐसा भरा कि दाग भी नही वना। पूर्ण स्वस्थ होकर जोयण उसी समय नगरी मे घुस गया और अपनी सुसराल के घर की सीढियाँ चढने लगा। सव सो रहे होगे, यह सोच दरवाजा खट-खटाना चाहता ही था कि दो स्त्रियो की वाते उसके कानो मे पडी। जोयण ने सोचा, पहले इनकी वाते ही सुन लूँ।

एक स्त्री कह रही थी—

"वेटी! आज का-सा मास तो तू कभी नही लाई। आज के मास-खण्ड मे वडा ही स्वाद है।"

'आज का मास तो स्वादिष्ट होगा ही।' उसकी लडकी ने कहा-'जामाता का मास स्वादिष्ट नही होगा तो किसका होगा। यह मास मेरे पति, अर्थात् तेरे जमाई का है।"

जोयण ने यह सुना तो उसका सिर चकराने लगा।

जोयण मुनि बोले—

"अभयकुमार! वह जोयण मैं ही हूँ। मैंने अपनी स्त्री का जो वीभत्स रूप देखा तो मुझे ससार से विरक्ति हो गई। मुझे लगा कि जव यह मेरा शरीर ही मेरा नही है तो यह स्त्री मेरी कैसे हो सकती है? अपने शरीर से अव कुछ काम ले लूँ, क्योकि वह रहेगा ही नही।

"ससार से विरक्त होकर मैं तभी रात मे ही लौट चला। अव मेरे लिए ससार मे कोई सचाई नही थी। तभी मैंने दीक्षा ले ली।

"हे अभय ! अपने जीवन की इसी घटना का स्मरण मुझे हो आया था, सो मैंने 'निस्सही' न कहकर 'अतिभय वर्तते—वहुत भय है,' ऐसा कहा।

□ □ □

इधर रात्रि का अन्तिम प्रहर वीत रहा था। जव वह प्रहर वीता तो आचार्य सुहस्ति के चौथे शिष्य मुनि धन्य उनकी वैयावृत्य करके आये। उन्होने यक्षायतन मे आते ही 'निस्सही' के स्थान पर 'भय अतिभय वर्तते' कहा। अभय फिर कुछ जानने को उत्सुक हुआ और कहने लगा—

''आपको भय की स्थिति क्यो वनी ? कैसा भय है प्रभो ?"

"अव कोई भय नही है।" मुनि वोले—"कभी भय था—वहुत भय था। उसी की स्मृति आज हो आई।"

"आपकी घटना भी मैं सुनना चाहता हूँ।" अभय ने कहा—"आखिर क्यो भय हुआ आपको ? कौन-सा भय आपको मुनि वना सका।"

"गृही के लिए वह भय आज भी है। सदा रहेगा।" धन्य मुनि वोले—"तुम मेरे जीवन की वह कँपा देने वाली घटना सुन लो। सव कुछ स्पष्ट हो जाएगा।"

यह कह मुनि धन्य श्रेणिकसुत अभयकुमार को आपवीती घटना सुनाने लग गये। □

★ ★ ★ १६

देवपुरी-सी सुन्दर और रम्य, जहाँ क्षिप्रा मालवगगा के रूप मे वहती है, -उस उज्जयिनी नाम की नगरी मे अजितसेन राजा का राज्य था। उसके सुखी राज्य मे वडे-वडे सेठ-साहूकार रहते थे। उन सेठो मे सुधन नाम का एक धर्मात्मा सेठ रहता था। उसकी सेठनी का नाम सुभद्रा था।

सेठानी सुभद्रा की कोख से जन्मा श्रेष्ठी सुधन का धन्य नाम का एक पुत्र था। जव वह पढ-लिखकर विवाह-योग्य हुआ तो सुधन ने उसका विवाह कर दिया। धन्य की पत्नी का नाम श्रीमती था। श्रीमती अनिद्य सुन्दरी और प्रीतिमती नारी थी।

वह धन्य मैं ही था। मेरो ही पत्नी का नाम श्रीमती था। श्रीमती को पाकर मैं धन्य था। उस जैसी सेवाशील और प्रेम करने वाली पत्नी की मैं कल्पना भी नही कर सकता था। वह मुझ पर न्यौछावर थी। मैं तो उस पर प्राण देता था।

एक दिन जव मैं वाहर से आया तो उसे वहुत उदास देखा। मैंने पूछा—

"मुझसे क्या अपराध हुआ कि आज तुम मुस्कराई नही ?"

वह मुस्कराई। पर उसकी मुस्कराहट फीकी थी। वह फिर उदास हो गई। मैंने उससे पुन कहा—

"आज तो तुम कुछ छिपा रही हो। तुम्हे मेरी कसम जो मुझसे छिपाओ।"

"हाय! यह क्या?" उसने सिहरकर कहा—"आपने कसम क्यो दे दी? अब तो बताना ही पडेगा। पर आपको मेरी जीभ काटनी होगी।"

"तुम पहेली मत बुझाओ।" मैंने कहा—"जो भी हो, अपनी उदासी का कारण बता दो।"

श्रीमती कहने लगी—

"प्राणेश्वर! मेरी उदासी का कारण मेरी जीभ है। यह जाने क्या-क्या खाना चाहती है। आज तुम उसे काट ही दो। तुम न कटोगे तो मैं काटूँगी। अब तो यह असभव पदार्थ भी पाना-खाना चाहती है।"

"वह असभव पदार्थ तो बताओ प्रिये!" मैंने खुशामद के लहजे मे कहा—"यदि तुम्हारे मन की चीज भी मैं नही ला सकूगा तो मैं ही अपने हाथ काट दूँगा। तुम अपनी जीभ क्यो काटो? अब तो बताओ।'

वह बोली—

"कस्तूरी हिरन की पूँछ का मास। भला, यह कैसे आयेगा। पर निगोडी जीभ को क्या कहूँ। बार-बार कहती है कि कस्तूरी हिरन की पूछ का मास मिले।"

"पूछ का मास तो मैं हर हालत मे ले आऊँगा। पर यह तो पता चले कि यह मास-मिलेगा कहाँ?"

"अजी छोडो भी ।" श्रीमती ने प्यार से मेरा हाथ पकडा और वोली—"राजगृह मे राजा श्रेणिक के गृह-उद्यान मे एक पालतू कस्तूरी मृग रहता है पर आप उसको मारेगे तो आपके प्राणो का सकट है । मैं आपको कही नही जाने दूँगी ।"

श्रीमती वडी चतुर थी । उसने इस ढग से अपनी वात कही कि मैं जोश से भर गया । उसके वार-वार रोकने पर भी राजगृह जाने को तैयार हो गया । अस्त्र-शस्त्र से तेयार होकर घर से निकला तो वह विछोह के कारण रोई । मैंने कहा कि हँसकर विदा करो तो वह हँस भी गई । मैं भला क्या जानता कि उसका रोना सच्चा था या हँसना । खैर, चलते-चलाते मैं राजगृह के निकट पहुँच गया और एक वाग मे रुका । मेरी रात वाग मे ही वोती । सवेरे नित्यकर्म से निवृत्त होकर मैं एक पेड के नीचे बैठ गया और प्राण-वायु का सेवन करने लगा—वडी अच्छी हवा वह रही थी ।

तभी वहाँ एक वेश्या वाग मे घूमने आई । उसका रथ बाग के वाहर खडा था । उसकी दो दासियाँ उसके साथ थी । वेश्या वाग मे घूम ही रही थी कि ऊपर से एक विद्याधर ने उसका अपहरण कर लिया । उसकी दासियाँ चीखी-चिल्लाई तो मेरा ध्यान उधर गया । मैंने पूरी परिस्थिति को भाँप लिया । तभी तक-तानकर मैने एक तीर छोडा जो विद्याधर के लगा और वह तत्काल मर गया । उसके हाथ से वेश्या छूट गयी, पर छूटकर

वह सरोवर मे गिरी। अगर धरती पर गिरती तो हड्डियाँ टूट जाती पर तालाव मे गिरने के कारण वच गई वेश्या। मैने तैर कर उसे वाहर निकाल लिया वरना डूव भी तो जाती।

वेश्या की दासियाँ उसकी सेवा मे लग गई। उसे होश आया। उठकर उसने दासियो से कहा—

"अव मैं ठीक हूँ। अव चलो।"

फिर उसने मेरी तरफ देखकर कहा—

"आपने मुझे नया जन्म दिया है। आपका अहसान मैं जीवन भर नही भूलूँगी।"

"अहसान काहे का? अपना फर्ज निभाना भी कोई अहसान है?"

"जव फर्ज की ही वात है तो मेरा भी तो कुछ फर्ज है।" वेश्या ने मुझसे कहा—"मैं आपके कुछ काम आ सकूँ तो धन्य हो जाऊँगी। आप परदेशी है, यह वताने की आवश्यकता नही है। वस, इतना वता दीजिये कि राजगृह आप किस प्रयोजन से आये है।"

मैं चुप रहा। वह भी कुछ नही वोली। वह उठी और उसने मेरा हाथ पकडकर कहा—

"मेरे साथ चलो। वहाँ आपको रहने की सव सुविधा मिलेगी। आप यहाँ कुछ मत वताइए। वही सव वताना।

मैं वेश्या के साथ चल दिया। उसी के साथ रथ मे वैठा। उसके आवास पर मैं वडे सुख से रहने लगा। एक दिन मैंने उसको अपने राजगृह आने का कारण वताया

तो वह मुस्कराने लगी। उसके मुस्कराने मे कुछ रहस्य था। मैंने पूछा—

"क्यो क्या बात है ? क्या कस्तूरी-हिरन की पूँछ के मास मे कुछ विशेषता नही होती ?"

वेश्या बोली—

"तुम बहुत भोले हो। मेरा ध्यान मास के ऊपर गया ही नही, मैं तो तुम्हारे भोलेपन पर मुस्करा रही हूँ। तुम्हारी स्त्री चतुर छिनाल है। अपने प्रेमी के साथ मटरगश्ती मे तुम्हे बाधक समझ उसने तुम्हे यहाँ भेजकर बुद्धू बनाया है।"

इतना सुनते ही मैं वेश्या पर बिगड गया। मैंने कहा-

"तुम अपने जैसा सबको क्यो समझती हो ? एका-श्रय मे रहने वाली गृहिणियाँ तुम जैसी नही हुआ करती। मेरी स्त्री जैसी पतिव्रता, सेवाशील और प्रेम करने वाली स्त्री शायद ही कोई दूसरी हो।"

"तुम्हारी बात ही ठीक हो सकती है। मैं गलत समझी। मुझे क्षमा कर दो।" वेश्या ने कहा—"तुमने तो उसके साथ दिन काटे है, रहे हो। मैंने उसे देखा भी नही। अनुमान तो अनुमान ही होता है।"

इतना कह वेश्या दूसरे-दूसरे प्रसगो पर बात करने लगी। अन्त मे उसने यह भी कहा कि कस्तूरी-हिरन की पूँछ का माँस दिलाने मे मैं तुम्हारा पूरा सहयोग करूँगी। अवसर की प्रतीक्षा करो। अवसर आयेगा।"

इस बात के सप्ताह भर बाद ही अवसर आगया।

राजा श्रेणिक के यहाँ कोई उत्सव था। वेश्या नृत्य करने गई। मुझे भी वह साथ ले गई। वह नृत्य मच पर चढी और मै दर्शको मे बैठ गया। धीरे-धीरे दर्शक नृत्य रस मे डूबने लगे। मैं चुपचाप खिसक गया और श्रेणिक की गृहवाटिका मे पहुँच गया। वहाँ कस्तूरी हिरन को मैंने पा लिया और उसे तीर का निशाना वना यमलोक पहुँचा दिया। राजा के वाटिकारक्षको ने मुझे रगे हाथो पकड लिया और आपस मे कहा—

"अभी इस हत्यारे को यही रखो। उत्सव की समाप्ति पर राजा के सामने पेश करेंगे।"

'अव मेरा क्या होगा' यह सोचकर मेरे प्राण कठ मे आ रहे थे। राजा मृत्युदण्ड देगा—ऐसा भाव मेरे मन मे उठ रहा था। इधर वेश्या अपनी पूरी साधना के साथ नृत्य कर रही थी। जव नृत्य समाप्त हुआ तो श्रेणिक राजा जैसे सोते से उठा हो। वोला वह—

"तुमने कमाल कर दिया। मैं तुम्हारी कला-साधना से वहुत प्रसन्न हूँ। आज तुम्हे मैं तीन वचन दे रहा हूँ कि अपनी इच्छा की तीन वस्तुएँ जो भी माँगोगी मैं दूँगा।"

"सोच-समझकर माँगूँगी।" वेश्या ने कहा—"अवसर विशेप के लिए तीनो वरदानो को सुरक्षित रखूँगी।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।" राजा ने कहा—"पर कुछ तो लेती ही जाओ।"

यह कह राजा ने अपना एक हार वेश्या को दिया। वेश्या ने इधर-उधर दृष्टि दौडाकर मुझे देखा तो मैं नहीं दीखा। फिर यह देखा कि वाटिका के रखवाले

मुझे वन्दी बनाकर राजा के पास ला रहे है। राजा ने जैसे ही मेरा अपराध सुना तो क्रोध मे बोला—

"इसे प्राणदण्ड दो। ऐसे अनोखे हिरन को इसने मारने का दुस्साहस कैसे किया ? मेरे राज्य मे तो आखेटक को भी कडा दण्ड दिया जाता है। इस पर यह तो हत्यारा रहा। वध करो इसका वध।"

तभी वेश्या उठकर खडी हुई और बोली—

"पृथ्वीनाथ ! तीन वरो मे से एक वर मुझे अभी दे दीजिए।"

"हाँ माँगो, क्या माँगती हो ?" राजा ने पुन अपना वचन दुहरा दिया। इस पर वेश्या ने कहा—

"तो पहले वर मे इस अपराधी को जीवन-दान दीजिए।"

राजा श्रेणिक ने मुझे मुक्त कर दिया। मेरे प्राण वच गए, यही मेरे लिए वहुत था। मैं वेश्या के घर आ गया। कस्तूरी मृग का मास पाकर भी न पाने का मुझे दु ख था। अव मुझे श्रीमती की याद आने लगी। मैंने वेश्या से कहा कि जिस प्रयोजन से मैं श्रीमती का वियोग सह रहा था, मेरा वह काम तो हुआ ही नही। अत अव मैं उज्जयिनी जाऊँगा। खाली हाथ जाऊँगा, इसका मुझे दु ख रहेगा।"

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।" वेश्या ने कहा—"इस इस वार आपकी स्त्री कस्तूरी-हिरन का मास आपसे मागेगी ही नही। आपकी स्त्री तो पतिपरायणा

है ही, अब आप मुझ वेश्या की दूरदर्शिता भी देख लेना।"

मैं वेश्या की बात को कुछ समझा और कुछ नही भी समझा। मैंने समझने की जरूरत भी नही समझी। मेरे साथ उज्जयिनी जाकर यह क्या करेगी, इस कुतूहल से मैंने वेश्या को साथ ले लिया। दोनो दासियाँ भी साथ रही। खाने-पीने का सब सामान लेकर हम चार प्राणी रथ मे बैठे। पाँचवाँ सारथी था।

यथासमय हम उज्जयिनी के बाहर एक उपवन मे पहुँच गये। वेश्या ने कहा कि तुम रात मे जाना। चुपके से यह देखना कि तुम्हारे शयन कक्ष मे कैसा दृश्य है।

वेश्या की बात मान मैं रात को ही अपने घर पहुँचा, छतो पर होकर घर के आँगन मे उतरा। मेरे शयन कक्ष मे प्रकाश था। मैंने एक छिद्र मे से झाँककर देखा कि मेरी स्त्री श्रीमती अपने किसी प्रेमी के साथ काम-क्रीडा कर रही है। देखते ही मुझे गश आ गया और मैं वही पड रहा। बड़ी देर बाद मुझे होश आया तो पुन झाँककर देखा। रति-क्रीडा से थककर श्रीमती और उसका प्रेमी—दोनो गहरी नीद मे सो रहे थे। दरवाजा खुला था। बस, किवाडे भिड़ी थी। नगी तलवार लेकर भीतर घुसा और श्रीमती के प्रेमी को एक ही वार मे यमलोक पहुँचा दिया। फिर छत पर होकर मैं घर से बाहर आ गया। चलते समय मैंने देखा कि श्रीमती को कुछ भी पता नही चला था।

भागकर मैं वेश्या के पास आया और रुआँसा-सा होकर उससे बोला—

"तुमने तो मेरी आँखो की पट्टी खोल दी। तुम अन्तर्यामिनी हो। मेरी स्त्री का दुश्चरित्र कैसे जान गई ?"

वेश्या बोली—

"स्त्री, स्त्री के रहस्य को जल्दी जान लेती है। इसमे मेरी कोई तारीफ नही है। तव तुम मेरी वात मान नही सकते थे पर अव तो अपनी आँखो से देख लिया ? अव तो जान गए कि श्रीमती कस्तूरी हिरन का मास राजगृह से क्यो माँगना चाहती थी ? वह तुम्हे मरवाना चाहती थी। अव तुम वाजार से किसी भी हिरन की पूँछ का मास लेना और कह देना कि कस्तूरी हिरन की पूँछ का है।"

"तो क्या अव पुन मेरी आँखो पर पट्टी वाँधना चाहती हो ?" मैंने वेश्या से कहा—"अव मैं श्रीमती की सूरत भी देखना नही चाहता। तुम्हारे साथ राजगृह ही चलूँगा।"

मै वेश्या के साथ राजगृह चला गया। वहाँ रहकर श्रीमती को भूलने की कोशिश करने लगा। पर कामासक्ति जल्दी नही मिटती। कुछ दिन वाद मुझे पुन श्रीमती की याद आई। वेश्या से विदा लेकर मैं पुन उज्जयिनी पहुँचा। इस वार स्वाभाविक ढग से दिन मे गया। पत्नी ने मेरा वडा प्रेमपूर्ण स्वागत किया। उसके स्वागत की नाटकीयता अव मुझ से छिप नही पा रही थी क्योकि आँख पर पडा परदा हट गया था।

मैंने श्रीमती से कहा—

"प्रिये ! इतने दिन तुम्हारा वियोग भी सहा, फिर भी काम नही बना। कस्तूरी हिरन का मास मैं नही ला सका।"

"आप आ गये यह क्या कम है ?" श्रीमती ने मुझसे लिपटकर कहा—"आपके पीछे मैंने गिन-गिनकर दिन काटे थे। उस अभागे दिन जाने मुझे क्या हुआ कि आपको राजगृह भेज दिया।"

"अब मैं कही नही जाऊँगा।" यह कह मैं वही श्रीमती के पास रहने लगा। उसके प्रेम मे भरपूर अभिनय था। मै भी अभिनय ही करता था। क्योंकि उसकी असलियत को जान गया था।

मेरे घर के ऑगन मे एक चबूतरा था। मैंने उसे चोरी की नजरो से निरख-परख लिया। मेरे घर मे वह नई चीज थी। पहली बार जब मैंने अपनी पत्नी के प्रेमी को मार दिया था तो रात मे आँख खुलने पर मेरी पत्नी श्रीमती ने उसे मरा पाया। उसे किसने मारा है, इसका भेद वह नही जान पाई और घर मे ही गड्ढा खोदकर उसे गाड दिया। वह चबूतरा श्रीमती के प्रेमी की समाधि थी।

श्रीमती जब भी भोजन बनाती, पहले अपने प्रेमी की समाधि रूप चबूतरे पर चढाती। फिर मुझे खिलाती और पतिव्रता का ढोंग रचकर बाद मे मेरी जूठी थाली मे खाती। एक दिन मैंने उससे कहा—

"आज तो घेवर वनाओ। पर आज पहले मै ही खाऊँगा। किसी और को वाद मे खिलाना।"

"आप तो रोज ही पहले खाते है।" श्रीमती ने आँखे मटकाकर कहा—"आप से अधिक प्रियतर मेरा कौन है, जिसे मैं आपसे पहले खिलाऊँगी ? आप मेरे प्रिय ही नही, प्रियतम है।"

मैने कुछ नही कहा। वह घेवर वनाने बैठी। पहले घान का पहला लच्छा उसने जान-बूझकर खरा सेका। ऐसा खरा सेका कि जल-सा गया। कढाई से घेवर का लच्छा निकाल श्रीमती वोली—

"यह तो ज्यादा सिक गया। आपके मतलव का नही रहा।"

यह कह उसने घेवर का पहला लच्छा अपने प्रेमी के चबूतरे पर फेक दिया। वडी चतुराई से उसने पहला भोग प्रेमी को लगा दिया। मुझसे नही रहा गया, सो मैंने क्रुद्ध होकर कहा—

"पतिव्रताओ मे सिरमौर! इस चबूतरे मे तेरा कौन बैठा है, जिसे तू रोज पहले भोग लगाती है। तेरा नाटक क्या अव चलता ही रहेगा ?"

श्रीमती सव कुछ समझ गई। उसने आव देखा न ताव कढाई का गरम-गरम तेल मेरे ऊपर डाल दिया। मैं वहाँ से भागा कि अव यह मुझे मार ही देगी। मैं सीधा अपने माता-पिता के पास पहुँचा। मेरे पिता सुधन और माता सुभद्रा मुझे देखकर रोने लगे। मैंने

उनसे कहा कि अब तो मेरी खुशी के दिन आ गये। ससार की निस्सारता मैंने देख ली।

माता-पिता ने मेरे फफोलो की चिकित्सा कराई। कुछ दिन मे मैं ठीक हो गया। श्रीमती द्वारा जलाये जाने पर ही मैंने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। जब ठीक हो गया तो भागवती दीक्षा लेकर मुनि बन गया।

इसके बाद धन्य मुनि ने अभयकुमार से कहा—

"अभयकुमार! अपने गृहस्थ-जीवन की—श्रीमती से सम्बन्धित घटना का स्मरण करके ही मैं 'भय अति भय' कहने लगा था।"

अब रात्रि का चौथा प्रहर भी बीत गया। उषा की लाली फैल गई। अभयकुमार का धर्म जागरण पूरा हो गया। चारो मुनियो से उसने ससार के स्वरूप की एक झाकी भी देख ली थी। अब वह अपने स्थान से उठा और पौषध पार करके कायोत्सर्ग मे लीन मुनि सुहस्ति के चरणो मे नतमस्तक हुआ। जब उसकी दृष्टि ऊपर उठी तो मुनिवर सुहस्ति के कठ मे अपनी विमाता चेलना का अठारहसरा हार पडा देखा। अभय समझ गया कि चारो मुनियो ने इसी हार को देखकर 'भय, महाभय और अतिभय' कहा था। उसने मुनि के कठ से हार उतार लिया और साधु-श्रमणो की त्याग वृत्ति, निस्पृहता और अपरिग्रह भावना पर विचार करते-करते विभोर हो गया।

फिर वह राजभवन गया और देवप्रदत्त हार पिता श्रेणिक को सौंप कहा—

"सात दिन मे हार खोज निकालने की मेरी बात पूरी हो गई। हार कैसे मिला, यह मैं भी नही जानता। बस, मिल गया, यही जानता हूँ।"

पूरी कथा सुनाने के बाद मुनि मुनिपति ने अवन्ती के श्रेष्ठी कुचिक से कहा—

"कुचिक! मैंने बहुत लम्बी कहानी सुनाई तुम्हे। मगध के राजा श्रेणिक के सरस, रोमाचक जीवन प्रसग तुमने सुने। पर इस बडी कथा मे मूल बात आचार्य सुहस्ति के चारो शिष्य-मुनियो—शिव मुनि, सुव्रत मुनि, जोयण मुनि और धन्य मुनि के जीवन की घटनाएँ ही महत्त्वपूर्ण है। इन घटनाओ को सुनकर तुम यह समझ गये होगे कि साधु धन-सम्पत्ति से उसी तरह डरते है, जैसे तुम लोग साँप-बिच्छू से डरते हो। भला, मुझे तुम्हारे अनर्थ रूप अर्थ से क्या प्रयोजन? मैंने तुम्हारा सोना नही लिया, क्योकि मैं भी निर्ग्रन्थ श्रमण हूँ।"

"साधुओ का चरित्र और स्वभाव ऐसा ही होता है, जैसा आचार्य सुहस्ति के शिष्यो का था।" कुचिक श्रेष्ठी ने कहा—"पर आपका स्वभाव सुव्रत, जोयण आदि मुनियो जैसा नही है। प्रत्यक्ष को मैं कैसे भुला सकता हूँ? मेरा स्वर्ण-पिण्ड आपने ही लिया है।

"मुने! आप कितनी भी कहानियाँ कहे, पर आपका चरित्र तो अपकारी सिंह जैसा ही है।"

"कौन सिंह?" मुनि मुनिपति ने पूछा—"सिंह ने अपने किस उपकारी के साथ अपकार किया था? मैं भी

तो सुनू कि सिह के आचरण से मेरे आचरण की तुलना कैसे होती है ।"

कु चिक वोला—

"मुने ! पापी-से-पापी आदमी को उठते देर नही लगती और साधु-से-साधु पुरुष को गिरते देर नही लगती । आप भी मेरे सव उपकार भूल गये और अपकारी सिह जैसा व्यवहार कर गये । आप सुनना ही चाहते है तो अपकारी अथवा कृतघ्न सिह का दृष्टान्त भी सुन लीजिए ।"

यो कह कु चिक श्रेष्ठी मुनि मुनिपति को सिह का दृष्टान्त सुनाने लगा ।

☆ ☆ ★ १७

वाराणसी नगरी में जितशत्रु नाम के राजा राज्य करते थे। आज की तरह उन दिनो भी वाराणसी ज्ञान-विद्या का केन्द्र थी। ज्ञानसागर की कुछ बूँदे ग्रहण करने के लिए बडी दूर-दूर से छात्र वाराणसी आया करते थे। वाराणसी विद्या की ही नही, धन-धान्य की भी आगार थी। बडे-बडे श्रेष्ठी और धनी वाराणसी मे बसते थे। इन सेठो के भवनो पर बने स्वर्ण कलश और कँगूरे ऐसे चमकते थे, जैसे शिवधाम कैलास के शिखर चमकते हो। वाराणसी गगा के तट पर बसी थी। गगा की उठती लहरे ऐसा सकेत देती थी कि इस नगरी मे भी ऐसी ही सुख-चैन की लहरे उठती है। राजा जितशत्रु ने आस-पास के सभी शत्रुओ को जीत-कर अपना जितशत्रु नाम सार्थक कर लिया था। वे बडे पराक्रमी और प्रजावत्सल राजा थे।

राजा जितशत्रु बडे गुणग्राही थे। उनकी सभा मे एक-से-एक बढकर विद्वान रहते थे। उन्होने राजपदो पर जिन-जिन को रखा था, वे अपने-अपने क्षेत्र मे अद्वितीय थे। नगरसेठ के पद पर प्रतिष्ठित सेठ सागर-दत्त धरा के कुबेर माने जाते थे। वे प्रसिद्ध दानशूर भी थे। राज-पुरोहित विद्यासागर उद्भट विद्वान थे। उनके

सामने अच्छे-अच्छे शास्त्रज्ञ नही ठहर पाते थे। इसी तरह राजवैद्य के पद पर प्रतिष्ठित देवदत्त भी वहुत ऊँचे चिकित्सक थे।

अन्य सभी राजपदाधिकारी राजसभा मे वैठा करते थे, पर राजवैद्य देवदत्त का सभा मे कोई काम नही था। वे राजा द्वारा प्रदत्त अपने भवन मे रहा करते थे। वही उनका औपधालय भी था। यो सभा मे उनका सम्मानित आसन था अवश्य। जव कभी वे स्वय या राजा जितशत्रु के वुलाने पर राजसभा मे आते तो अपने सम्मानित आसन पर वैठा करते थे।

राजवैद्य देवदत्त जव भी अपने घर से निकलते थे तो राजप्रदत्त स्वर्णरथ मे वैठकर जाते थे। आगे-पीछे उनके अगरक्षक भी रहते थे। उनके घर मे कचन का पीलापन छाया रहता था। उनकी पत्नी मनोरमा आभूपणो से लदी रहती थी। राजा जितशत्रु की ओर से उन्हे मासिक रूप मे हजारो स्वर्णमुद्राएँ मिलती थी। घर पर जो नौकर-चाकर थे, उनका सव खर्च राजा की ओर से था।

एक वार राजा जितशत्रु को ज्वर आया। उन्होने राजवैद्य देवदत्त को वुलाया तो उन्होने राजा से कहा—

"राजन्! आपको ज्वर है। अतः आप दो-चार दिन का उपवास रखिये।"

"उपवास क्यो रखू ?" राजा ने कहा—"क्या तुम्हारे पास कोई ऐसी औपध नही, जो वुखार मिटा सके ?"

राजवैद्य वोले—

"औषध से बुखार टल तो सकता है, पर मिट नहीं सकता। कर्म का भोग, बिना भोगे कैसे मिटेगा ? मल-सचय का परिणाम ज्वर है। अत उपवास से दोष—मलसचय का दोष मिटेगा तो फिर दु ख, अर्थात् ज्वर भी मिट जाएगा। विना दोष के दु ख हो ही नही सकता और दोष मिटाये विना दु ख भी मिटता नही, टल जाता है। उपवास तप का ही दूसरा नाम है और तप—सुखप्रद, दुख-दोष का नाश करने वाला होता है। मुनि लोग इसीलिए तप करते है कि उनके सचित दोष अथवा कर्म मिट जाएँ।

"राजन् ! हमारे चिकित्साशास्त्रो मे भी लिखा है—ज्वरादौ लघन कुर्यात्। और तो और आयुर्वेदशास्त्र मे एक से एक उत्तम औषधो और महौषधो का उल्लेख करने के वाद मात्र उपवास को ही परम औषध वताया है—लघन परमौषधम्।"

"आपकी वात मेरी समझ मे आती तो है।" राजा जितशत्रु ने कहा—"पर मुझे तो कल एक वडे जरूरी कार्य से जाना है। आप राजवैद्य है। किसी तरह बुखार आज ही उतरना चाहिए।"

"उतर जाएगा।" राजवैद्य देवदत्त ने कहा—"ज्वर तो उतर जाएगा, पर लौटने के वाद आप उपवास अवश्य कीजिए।

"राजन् ! आम चिकित्सक धन के लोभ मे यह नही वताते कि औषधे रोगजन्य कष्टो को छिपाने के लिए है, रोगो को मिटाने की क्षमता उनमे नही होती। पर मुझे

तो आपका दिया सव कुछ मिलता है । मै क्यो आपको झूठी वात वताऊँ ? वस्तुत औषध का रोग से कोई सम्वन्ध नही। रोग का सम्वन्ध केवल दोष से है और विश्व की कोई भी औषध दोप नही मिटा सकती ।"

"फिर दोप कैसे मिटता है ?" प्रसगवश राजा ने पूछा—"दोप मिटाने के लिए भी तो कुछ होना चाहिए ?"

राजवैद्य ने कहा—

"पहले यह जानना चाहिए कि दोप है क्या ? विना जाने दोप मिटेगा कैसे ? एक ने शरवत पिया तो जुकाम हो गया। उसने शरवत को दोपी वता दिया कि शरवत पीने से जुकाम हुआ है। ऐसी हालत मे दोप कैसे मिटे ? शरवत ही जुकाम का कारण होता तो जितने शरवत पीने वाले है, सभी को जुकाम होता। उक्त व्यक्ति के फेफडो मे जुकाम पहले भी था। शरवत पीने पर वह प्रकट हो गया।

"राजन् ! ये वाते लम्वी है। पहले मै आपको औषध दे दूँ ।"

इसके वाद राजवैद्य देवदत्त ने अपने साथ का चर भेजकर औषध मँगाई। औषध के प्रभाव से तीन घडी के वाद राजा का ज्वर उतर गया। राजा ठीक हो गया। उसके शकित मन ने सोचा कि वैद्य तो कहता था कि ज्वर तप या उपवास के विना नही जाएगा, पर यह तो चला गया। राजा को जहाँ जाना था, दूसरे दिन

वहाँ गया। यथासमय वापस आया तो राजवैद्य देवदत्त को पुन बुलाकर नाडी दिखाई और कहा—

"देखो वैद्यजी ! अव तो मुझे बुखार नही है। आपने कहा था कि लौटकर उपवास करना। जव बुखार ही नही है तो फिर उपवास क्यो करूँ ?"

वैद्य वोले—

"बुखार अभी गया ही कहाँ है, जो नही है। आपको वुखार अव भी है, पर इस समय वह छिपा हुआ है। मैं आपको औपध देता हूँ।"

राजवैद्य ने राजा जितशत्रु को औषध दी तो एक प्रहर वाद उसे जोरो का वुखार आ गया। एक प्रहर वाद राजवैद्य स्वय ही राजा के पास पहुँचे और बैठने के वाद कहा—

"मै जानता था कि औषध देने के एक प्रहर वाद आपको वुखार आयेगा।"

"तो आपकी औपध बुखार उतारने और वुलाने दोनो के लिए होती है ?" राजा ने कहा—"औषध तो वुखार उतारने के लिए ही दी जाती है।"

"ऐसा नही है राजन् !" राजवैद्य ने कहा—"एक औषध ने बुखार छिपाया था—टाला था और दूसरी ने उसे प्रकट कर दिया। इसी औपध को मैं खाऊँगा तो मुझे वुखार नही आयेगा, क्योकि मेरे अन्दर बुखार है ही नही। आपके अन्दर भी यदि वुखार नही होता तो आता कहाँ से ? अत अव आपको इसे भोगकर मिटाना है या फिर तप करके जल्दी मिटा देना है।"

राजा जितशत्रु इन्ही सच्ची वातो के कारण अपने

राजवैद्य देवदत्त का सम्मान करते थे। थे भी देवदत्त एक कुशल चिकित्सक।

राजवैद्य देवदत्त के दो पुत्र थे। दोनो अभी छोटे ही थे। वडा जीवानन्द पॉच साल का था और छोटा केशव तीन वर्ष का था। माता-पिता लाड मे उन्हे जीवा और केशू रहते थे। राजा से जो वाते हुई, वे सव वाते देवदत्त ने अपनी पत्नी मनोरमा को वताई। ऑगन मे कुछ दूर उनके दोनो वच्चे खेल रहे थे। वडा जीवानन्द वैद्य वन-कर केशव की नाडी पकड रहा था। केशव मिट्टी लेकर पत्तो मे पुडिया वना रहा था। उनके इस खेल को देख देवदत्त ने मनोरमा से कहा—

"देखो-देखो, क्या खेल रहे है। लगता है, आगे चलकर ये भी वैद्य ही वनेगे।"

"मूसे के वच्चे तो विल ही खोदेगे ?" मनोरमा ने हँसकर कहा— "वैद्य वन भी गये पर आप जैसे चिकित्सा-पारगत नही वन सकते। आपकी टक्कर का काशी मे एक भी नही है।"

"हैं [क्यों नही ?" राजवैद्य ने कहा—"एक से एक वढकर है। भाग्य ने मुझे राजवैद्य वना दिया, तो सभी मुझे वडा मानते है। मेरे वाद जीवा राजवैद्य वनेगा। राजा ने मुझे वचन दिया है कि यह पद आपका वशानु-गत पद रहेगा। मैं जीवा को वैद्यक पढने चम्पापुरी अपने मित्र ज्ञानगर्भ के पास भेजूगा।"

"क्यो आप नही पढा सकते ?" मनोरमा ने कहा— "इतनी दूर इसे भेजने की क्या जरूरत है ?"

देवदत्त ने कहा—

"बडे-वडे विद्वान आचार्य यदि अपने पुत्रो को स्वय ही विद्वान बना ले तो उन्हे गुरु के पास विद्यालय क्यो भेजे ? पिता के प्रति जो आदर-भाव होता है, वह गुरु के प्रति आदर-भाव से भिन्न होता है, फिर ज्ञानगर्भ मेरे परम मित्र भी है। चिकित्सा-जगत के वे उद्भट विद्वान है।"

"बडा जीवा तो अभी पॉच का है।" मनोरमा ने कहा—"आठ साल का होने पर ही तो कही जाएगा। छोटे केशू को मै कर्मकाण्डी पण्डित वनाना चाहती हूँ।"

"इसे तुम वाराणसी मे ही रखना चाहती हो, इसीलिए।" देवदत्त ने मनोरमा से हँसकर कहा—"ठीक है, जीवा ज्ञानगर्भ के पास पढने चम्पापुरी चला जाएगा और केशव यही मार्तण्ड अग्निहोत्री से कर्मकाण्ड की शिक्षा लेता रहेगा। एक तो अपने पास रहना ही चाहिए।"

मनुष्य अपने ढग से योजनाएँ वनाता है। मनमोदक वह वडे प्रेम से खाया करता है। पर भाग्य की लीला को कौन जान पाया है ? राजवैद्य देवदत्त का खेल यो अचानक विगड जाएगा, इसे कौन जानता था ? रोगो की औषध सब वैद्य जानते है। पर मौत की औषध तो देवदत्त के पास भी नही थी। उन्हे अचानक ही काल ने ग्रस लिया। मनोरमा पर तो पहाड ही टूट पडा। उसके दोनो वच्चे छोटे ही थे।

एक महीने वाद राजा जितशत्रु ने नये राजवैद्य की नियुक्ति की। यह था वाराणसी का ही सोमदत्त। यह

भी योग्य चिकित्सक था। देवदत्त के पास जो राज्य द्वारा दी गई हवेली थी, वह मनोरमा को खाली करनी पडी। उसमे अब नये राजवैद्य सोमदत्त का परिवार रहता था। मनोरमा को राजा ने एक साधारण मकान दे दिया था।

मनोरमा ने जमा पूँजी खर्च कर डाली। और करती भी क्या ? तन के आभूषण भी विक गये। यह सब पाँच-छह साल मे हो गया। जीवानन्द अव ग्यारह साल का था और केशव आठ वर्ष का था। जो दशा पहले कभी मनोरमा की थी, वह अव नये राजवैद्य सोमदत्त की थी। एक ओर भुखमरी, तगी, गरीवी और दीनता थी तो दूसरी ओर समृद्धि, ठाठ-वाट और ऐश्वर्य था। दिन ऐसे ही वदलते हैं। न कोई सदा अमीर रहता है और न सदा गरीव ही वना रहता है।

एक दिन नया राजवैद्य सोमदत्त स्वर्णमडित रथ मे वैठ राजसभा को जा रहा था। उसके आगे-पीछे, दाएँ-वाएँ अगरक्षक चल रहे थे। सभी घुडसवार थे। अपने घर से मनोरमा ने सोमदत्त की सवारी देखी तो उसकी आँखो मे आँसू आ गये। उसे रोता देख जीवानन्द ने पूछा—

"क्यो रोती हो अम्मा ? क्या पिताजी की याद आ गई ?"

"उनकी वात याद आ गई ?" मनोरमा ने धोती के छोर से आँसू पोंछते हुए कहा—"वे तुझे राजवैद्य वनाना चाहते थे। वे होते तो तू योग्य चिकित्सक वनता। उनके वाद आज तू ही राजवैद्य होता। देख, जैसे ठाठ इस नये

राजवैद्य सोमदत्त के है, एक दिन ऐसे ही ठाठ-वाट तेरे पिता के थे। अव क्या हो, मन की मन मे ही रह गई।"

"तो क्या हम दोनो भाई अव वैद्य नही वन सकते ?" जीवानन्द ने कहा—"यदि यह पद हमारे परिवार का वशानुगत पद है तो मैं वैद्यकशास्त्र पढूगा माँ !"

"कैसे वनेगा तू वैद्य ?" मनोरमा ने कहा—"यहाँ तो तुझे कोई पढा नही सकता। हाँ, ज्ञानगर्भ के पास भेजने को वे भी कहा करते थे पर तू अकेला ।"

"मैं भी साथ जाऊँगा माँ !" छोटे केशव ने कहा— "तुम हमे चम्पापुरी भेज दो।"

पुत्रो का वहुत उत्साह देख मनोरमा की इच्छा भी हुई कि इन्हे चम्पापुरी भेज दू। एक दिन दोनो ने ही वाराणसी से चम्पापुरी को प्रस्थान कर दिया। अपने पिता राजवैद्य देवदत्त के नाम के साथ जीवानन्द और केशव ज्ञानगर्भ से मिले तो उन्होने बडे स्नेह के साथ इन्हे सत्कारा। फिर तो दोनो की पढाई भी शुरू हो गई। वैद्य वनने की दोनो मे वडी लगन थी, सो वडी रुचि और निष्ठा से दोनो पढने लगे।

गुरु ज्ञानगर्भ भी उन्हे बडे प्रेम से पढाते। दोनो सुशिष्यो को अपने साथ जगल ले जाते और एक-एक जडी तथा वनौषध का परिचय कराते। कुछ ही वर्षों मे दोनो भाई कुशल और पारगामी चिकित्सक बन गये। यथासमय गुरु आज्ञा से दोनो ने वाराणसी को प्रस्थान किया। अपने साथ कुछ अमोघ प्रभाव वाली औषधे—

रस-रसायन आदि भी ले ली। कुछ औषवें व चूर्ण तो चमत्कारी भी थे।

औपधो की पोट लिये दोनो भाई वनमार्ग से पैदल ही जा रहे थे। मन मे वडी ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ थी। जीवानन्द कह रहा था—

"केशव ! जाते ही मैं राजा जितशत्रु से मिलूगा और कहूंगा कि मैं राजवैद्य देवदत्त का पुत्र हूँ। उनके वाद मै ही राजवैद्य वनने का अधिकारी हूँ अत मुझे यह पद दीजिए।"

केशव वोला—

"पर सोमदत्त सहज मे ही यह पद नही छोडेगा। वह शास्त्रार्थ करके हमसे योग्य सिद्ध होने का प्रयास भी तो करेगा।"

"शास्त्रार्थ भी हम करेंगे। मैं जानता हूँ कि चिकत्सा की हार-जीत रोगी को सामने रखकर होती है। हमारे पास गुरुप्रणीत ऐसी-ऐसी चमत्कारी औपधे है कि साधारण अन्धा तुरन्त देखने लगे। वाराणसी से किसी अधे को पकड लेगे और सोमदत्त से कहेगे कि इसे ठीक करके दिखाओ।"

"मैं कुछ और ही कहूँगा।" केशव ने कहा—"मैं किसी रोगी को लेकर कहूँगा कि इसे लेकर हमारे साथ वन मे चलो। वन की जडी वूटियो से जो इस रोगी को ठीक कर दे, वही योग्य है। हमारे गुरूजी ने जडी-वूटियो का जो दुर्लभ ज्ञान हमे कराया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।"

बाते करते-करते दोनो आगे बढे तो उन्हे मार्ग मे एक सिंह बैठा मिल गया। जीवानन्द ने केशव से कहा—

"यह सिंह अधा है। इसके पास से चलो, तो भी हमारा कुछ नही बिगाड सकता।"

"हाँ, अधा तो है।" केशव ने कहा—"देखो कैसे पलक झपका रहा है। पर यह अधा हुआ क्यो, इसका निदान करो।"

"किसी विषाक्त अथवा बीमार मृग का मास खा लिया होगा।" जीवानन्द ने कहा—"उसी का प्रभाव आँखो पर हुआ है।

"केशव! निदान की बाते छोडो। हमारे पास जो चूर्ण है, उसका प्रयोग कर इस सिंह के अधत्व को ही पहले दूर करे।"

"नही भैया, ऐसा कभी मत करना।" केशव ने डरते हुए कहा—"अधा होने के कारण यह सिह शिकार नही कर पाता। इसका पेट देखो, पीठ मे मिल रहा है। जाने कब का भूखा होगा। दृष्टि मिलते ही यह हमे खा जाएगा।"

"तुम तो व्यर्थ वहम करते हो।" जीवानन्द ने केशव से कहा—"प्रयोग और सेवा का अवसर आने पर जो वैद्य चूकता है, वह वैद्य नही।"

जीवानन्द ने केशव की बात नही मानी। वह पोटली खोलने लगा। केशव दूरदर्शी था, सो वह तब तक पेड पर चढ गया। जीवानन्द धीरे से सिंह के पास पहुँचा

और उसकी आँखो मे चूर्ण डाल दिया। कुछ देर उसने पलक झपकाये। उसकी आँखो से पानी भी झरा। फिर उसे दीखने लगा। कृतघ्न सिंह की दृष्टि जैसे ही अपने उपकारी जीवानन्द पर पडी तो उस पर झपट पडा और मार कर खा गया।

कुचिक श्रेष्ठी ने मुनिवर मुनिपति से कहा—

"तो मुनि! जैसी कृतघ्नता सिंह ने जीवानन्द के साथ की वैसी ही आपने मेरे साथ की है।"

मुनि वोले—

"श्रेष्ठी! आचार्य सुहस्ति के चार शिष्यो का दृष्टान्त मैंने तुझे सुनाया। फिर भी तुझे मेरा विश्वास नही हुआ। मुझे भी क्या भद्रवृषभ की तरह शपथ खानी पडेगी? भद्र वृषभ भी सवकी दृष्टि मे दोषी था पर जव उसने शपथ खाई तो सवकी आँखे खुल गई।"

"भद्र वृषभ पर क्या आरोप था और उसने शपथ खाकर कैसे अपने को निर्दोष सिद्ध किया था? यह दृष्टान्त मैं भी तो सुनूँ।"

मुनिपति कुचिक श्रेष्ठी को भद्र वृषभ का दृष्टान्त सुनाने लगे।

★ ★ ★ १८

चम्पानगरी मे अजितसेन नामक राजा राज्य करते थे। उनके राज्य मे यों तो प्रजा को सभी सुख थे, पर रक्षा-सुरक्षा का विशेष प्रवन्ध था। नगरी का नगर-रक्षक अपराधी को पकडने मे एक ही था। झूठ-सच का निर्णय करने के लिए वह ऐसी शपथ क्रिया कराता था कि झूठा तो कॉप ही जाता था। शपथ की नौवत ही नही आती थी और वह पहले ही अपना अपराध स्वीकार कर लेता था। सभी नागरिको के सम्मुख लोहे का गोला गरम किया जाता और अपराधी से कहा जाता कि यदि तुम सच्चे हो तो इस दहकते गोले को हाथ पर रखो। वस, अपराधी सव स्वीकार कर लेता। इसके विपरीत साँच को तो कही आँच है ही नही।

न्याय, रक्षा, मर्यादा आदि गुणो के शासन वाली चम्पापुरी मे सभी प्रजा सुखी थी। वहाँ सेठ-साहूकार भी थे और किसान भी थे। दूध-दही बेचने वाले ग्वाले भी थे। चम्पापुरी मे ही एक मठाधीश था। उसके पास गायो के दो गोकुल थे। एक वार उसकी एक गाय व्याई तो उसने वडे सुन्दर वछडे को जन्म दिया। वछडे की सुन्दरता पर मोहित होकर मठाधीश ने विचार किया कि इस वछडे को तो मैं छट्टा रखूंगा। यानी यही पूरा दूध पियेगा, इसकी गाय का दूध तनिक भी नही काढूंगा।

वछडे तो मेरे गोकुलो मे और भी है, पर ऐसा सुन्दर एक भी नही है। इसे मे साँड वनाऊँगा।

मठाधीश ने वछड़े को छुट्टा दूध पिलाया। गोमाता के चारो थनो से वही लगा रहता। कुछ दिन मे वह बडा हो गया। उसका रग हिम जैसा धवल था। उसकी टाट भी वहुत ऊँची उठी थी। आँखो मे प्राकृतिक काजल-सा लगा रहता था। अव वह स्वच्छन्द होकर चम्पापुरी की गलियो-बाजारो मे घूमा करता। नगरी के नर-नारी उसे बडा प्यार करते। उसका नाम सवने सूर्प सढ रख लिया था।

सूर्प सढ को देखकर गृहिणियाँ अपने-अपने घरो के आगे खडी हो जाती। वह वारी-वारी से सवके पास जाता। कोई चने की दाल और गुड खिलाती, कोई रोटी ही देती। इस तरह कुछ-न-कुछ सभी खिलाती। वाजार के दुकानदार भी यही करते। फल वाला फल देता और मिठाई वाला मिठाई देता।

एक दिन एक अवोध वालक ने अपनी माँ से पूछा—

"माँ ! गोमाता तो हमे दूध देती है। उसे हम मावस-पूनो को आटे की पेडी या लोवा खिलाते हैं। पर यह सूर्प सढ हमे क्या देता है ? यह तो हल मे भी नही चलता। मुफ्त मे खाता है।"

"यह तो हमे वहुत कुछ देता है।" माँ ने वालक से हँसकर कहा—"इसी की वदौलत तो गाय हमे दूध देती है।"

वालक नही समझा तो पुन पूछा—

"इसकी बदौलत गाये दूध कैसे देती है ?"

माँ ने बताया—

"अभी तुम नही समझोगे। बस, इतना ही समझ लो कि यह हमारे गोवंश की वृद्धि करता है।"

सूर्प सढ को बालक भी बहुत प्यार करते थे। क्योकि वह किसी को मारता नही था। वह बडा ही समझदार था। दौडते-भागते छोटे उसकी टाँगो के पास आजाते तो वह उन्हे बचा देता। एक बार तो एक छोटा बच्चा मार्ग मे पडा था। उधर से रथ आ रहा था। रथ से यह बालक कही कुचल न जाए, यह सोच सूर्प सढ दौडकर गया और रथ के आगे सीग अडाकर खडा हो गया जब सारथी ने रथ से उक्त बच्चे को उठा लिया, तब सूर्प सढ ने रथ आगे बढने दिया। सूर्प सढ को अनीति पर क्रोध भी आता था। एक बार एक फल वाले ने उसे कोई फल नही दिया और उसे भगाने के लिए उस पर पानी के छीटे मारे तो क्रोध मे उसने फलो के टोकरे उलट दिये और फिर कभी उसकी दुकान पर नही गया। ऐसे समझदार और भद्र वृषभ को कौन नही चाहेगा। सच कहे तो सूर्प सढ चम्पानगरी का खिलौना, नायक—सब कुछ था।

□ □ □

चम्पापुरी मे ही जिनदास नामक एक श्रावक रहता था। वह बडा ही धर्मनिष्ठ, तपोधन, सम्यक्त्वी और श्रमणोपासक था। वह नित्य नियम से सभी धार्मिक क्रियाएँ करता था। नगरी के बाहर जो शून्यगृह थे,

उनमे रात-रात भर वह खडा होकर कायोत्सर्ग करता था।

चम्पापुरी के वाहर खेतो पर किसानो की झौपडियाँ और कच्चे घर वने हुए थे। फसल की रखवाली के दिनो मे किसान इनमे रात को रहते थे । पर जव खेत सूने होते थे तो ये झौंपडियाँ और कच्चे घर भी दिन-रात सूने रहते थे। ये सूने घर एक ओर तो कायोत्सर्ग में लीन श्रावक और धार्मिक पुरुषो के उपयोग मे आते थे । दूसरी ओर पर-कीया स्त्रियो के सकेत-स्थल अथवा मिलन-स्थल का काम भी देते थे।

जिनदास श्रावक की स्त्री धनश्री पर-कीया थी। दूसरे शब्दो मे, उसे पर पुरुप से प्रेम करने वाली दुश्चरित्र भी कह सकते है। उसका पति जिनदास तो शून्य-घरो मे कायोत्सर्ग करता था और वह अपने घर पर अपने प्रेमी के साथ रति-क्रीडा करती थी । एक दिन उसने अपने प्रेमी से कहा—

"रोज-रोज तुम्हारा घर मे आना ठीक नही है।"

"पर मेरे घर तो कोई गु जाइश ही नही है।" धनश्री के प्रेमी ने कहा—"तुम्हारा पति कितना अच्छा है, जो हमारे लिए नित्य रात को घर खाली कर जाता है।"

"किसी दिन रात मे आ भी सकता है ।" धनश्री ने कहा—"वह न भी आये, पर तुम्हे आते-जाते किसी ने देख लिया तो गजव हो जाएगा ।"

"आज की रात तो यही तुम्हारे घर कटेगी।" धनश्री के प्रेमी ने कहा—"कल दिन मे मैं खेतो पर जाकर

किसी शून्यघर को देख आऊँगा। कल की रात वही कटेगी।"

"शून्य घर का क्या देखना ?" धनश्री ने कहा—"आजकल तो सभी घर शून्य होगे । रात के अँधेरे मे किसी भी झौपडी या घर मे घुस जाएँगे।"

प्रेमी बोला—

"मैं ऐसा घर देखकर आऊँगा, जिसमे कोई पलँग भी पडा हो।"

ढूढने पर सब मिल जाता है । अगले दिन धनश्री और उसके प्रेमी को एक ऐसा शून्यघर मिल गया, जिसमे एक पलग पडा था। दोनो रात के अँधेरे मे धुस गए। धनश्री ने सुझाव दिया कि पलग को पकडवाकर इधर कर ले तो कुछ ज्यादा आड हो जाएगी।

प्रेमी ने उठकर पलग पकडवाया तो नही उठा। उसके चारो पायो मे कीले ठुकी थी और वे कीले धरती मे गडी थी। प्रेमी ने जोर लगाकर पलग उठाया तो उठ गया। उसका सिरहाना घुमाते हुए उसने धनश्री से कहा—

"कोई ले न जाए, इसलिए पलग वाले ने पायो मे कीलें ठोककर इसे जमीन गाड दिया था।"

यह कह धनश्री और उसके प्रेमी ने पलग को अपने ढग से पुन विछाया तो एक पाये की नुकीली कील जिन-दास के पैर मे गड गई। एक कोने मे खडा जिनदास कायोत्सर्ग मे लीन था। कील गडने की असह्य वेदना

को उसनें समभाव से सहन किया और एक वार भी उफ नही किया ।

जिनदास ने अपनी पत्नी को पहचान भी लिया था, पर उसने कुछ नही कहा । क्यो नही कहा ? क्योकि धार्मिक पुरुष किसी के प्रति भी राग-द्वेष नही रखते ।

कील चुभती रही और जिनदास के पैर से रक्त का फुहारा छूटता रहा । रति-क्रीडा मे मग्न पलग पर लेटी घनश्री कुछ नही जान पाई । रात भर मे जिनदास के प्राण पखेरू उड गये । सबेरे धनश्री और उसका प्रेमी उठे तो पलग उठाया । पलग उठाने के साथ ही कील उखडी तो जिनदास धडाम से गिरा । यह दृश्य देखकर धनश्री भय से काँपने लगी । अब क्या होगा ? उसका प्रेमी तो चुपचाप नौ दो ग्यारह हो गया ।

धनश्री का भाग्य कि उसी समय घूमता-घामता सूर्प सढ वहाँ आ गया । धनश्री को तुरन्त अपने वचाव युक्ति सूझ गई । उसने अपने पति का रक्त सूर्प सढ के सीगो पर लगा दिया और जोर-जोर से चिल्लाने लगी--

"इस दुष्ट साँड ने कायोत्सर्ग मे लीन मेरे पति को मार दिया ।"

उसकी चीख-पुकार मे वडी करुणा थी । सच ही कहा है कि नारी के चरित्र को वनाकर स्वय विधाता भी उसे नही समझ पाया । लठैतो की भीड इकट्ठी हो गई । अव सवकी दृष्टि मे धनश्री पतिव्रता थी और सूर्प सढ हत्यारा था । कुछ समझदार पुरुषो ने कहा भी—

"समझ मे नही आता, सूर्प सढ आज इतना मूर्ख कैसे हो गया ।"

पर कहने वालो ने यह भी कहा—

"आखिर है तो जानवर ही। इसके सीग तो देखो कितने पैने है। रगे सीगो पकडा गया है। मारो इसे।"

सूर्प सढ पर लाठियाँ पडने लगी । वह वार-वार रँभाता और सिर हिला-हिलाकर कहता है कि मैंने नही मारा है। पर उसका सिर हिलाना किसी ने नही समझा। समझा तो यही समझा कि खून लगा होने के कारण इसके सिर को मक्खियाँ काट रही है सो सिर हिला-हिलाकर यह मक्खियाँ उडा रहा है।

कब तक पिटता सूर्प सढ ? वह एकदम भाग छूटा और सीधा नगर-रक्षक के यहाँ पहुँचा। पीछे-पीछे दृश्य-द्रष्टा भी गये। उन्होने दूर से ही चिल्लाकर कहा—

"इससे बचना। इसने श्रावक जिनदास को मार दिया है।"

तभी सूर्प सढ ने वार-वार सिर हिलाया। नगर रक्षक के पास बैठे लोगो ने कहा कि यह तो इन्कार कर रहा है। उनके कथन की पुष्टि करने के लिए वृषभ ने अपना सिर धरती पर टेक दिया। अब नगर-रक्षक वोला—

"साँच को आँच कही भी नही है । यह शपथ लेने यहाँ आया है। लोहे का गोला गरम करो।"

अव तो वहुत भारी भीड इकट्ठी हो गई। लोहे का गोला लाल हो गया । वडे-वडे सँड़ासो से पकडकर उसे सूर्प सढ के सिर पर रखा जाने लगा तो उसने अपनी जीभ

वाहर निकाल दी। वाल-रवि जैसे तप्त गोले को सूर्प सढ की जीभ पर रखा गया तो चमत्कार हो गया। साँच को आँच कुछ नही हुई। वृषभ की जीभ का कुछ नही बिगडा, उल्टे वह तप्त और लाल गोला भी ठडा हो गया।

अव तो सूर्प सढ की जय-जयकार होने लगी। उसे मालाये पहनाई गई। उसका तिलक किया गया। धनश्री की वाद मे जो फजीहत हुई, उसका न कहना ही ठीक है। पाप अपने आप वोलता है, छिप नही पाता।

मुनि मुनिपति वोले—

"तो कुचिक! कभी-कभी ऐसे अवसर वन जाते है कि कुछ का कुछ दीखता है। पहले तो सूर्प सढ सभी को दोषी लगता था, क्योकि वह रगे सीगो पकडा गया था। पर सत्य, सत्य ही रहा।

"तुम्हारी भ्रान्ति भी तव मिटेगी, जव मै भी भद्र वृपभ सूर्प सढ की तरह शपथ खाऊँगा।"

"शपथ खाने की क्या जरूरत है?" कुचिक श्रेष्ठी ने कहा—"आपकी चोरी तो स्पष्ट है। चुराने वाला कव कहेगा कि मैं चोर हूँ। आपने मेरे साथ गृहगोधा की-सी कृतघ्नता की है। कहो तो मैं वह दृष्टान्त भी सुना दू।"

मुनि मुनिपति की क्षमाशीलता धन्य-धन्य थी। इतने स्पष्ट आरोपो और कटु शब्दो को सुनकर भी उन्हे क्रोध नही आया था। उन्होने वडे शान्त सयत स्वर मे कहा—

"गृहगोधा ने क्या किया था, सो सुनाओ। सुनने के वाद ही मैं कह सकूगा कि मेरा आचरण गृहगोधा जैसा है या नही।"

कु चिक ने कहा—

"सुनने के वाद आप कुछ भी कहे पर आपने वही किया है, जो गृहगोधा ने किया था।"

कु चिक ने गृहगोधा की कहानी यो सुनाई कि किसी गाँव मे कोई गृहगोधा रहती थी। एक रात वह सोई तो सवेरे उसकी आँखे वन्द थी। कीचडो के कारण उसकी आँखे वन्द हो गई थी। उन आँखो पर मक्खियाँ आ बैठी। कीचडो को खाकर मक्खियो ने गृहगोधा की आँखो को साफ कर दिया।

गृहगोधा की आँखे खुली तो वह अपना ही हित करने वाली मक्खियो को खा गई। कृतघ्न लोग जिस थाली मे खाते है, उसी मे छेद करते है।

"हे मुने। मैंने भी आपके पावस-प्रवास की व्यवस्था की। आप जल गये थे तो मैंने आपकी वडी लगन से सेवा सुश्रूषा की। पर आपने कुछ न सोचा और गृहगोधा की तरह मेरा गडा धन ही खोद डाला।"

"धन का मोह मुझे होता तो मैं राज-पाट छोडकर साधु क्यो वन जाता ?" मुनिपति मुनि ने कु चिक से कहा —"यदि तू यही मानता है कि मैंने तेरा धन लिया है तो प्रमाण दे। प्रमाण क्यो नही देता ? विना प्रमाण के तेरा आरोप कैसे सिद्ध हो ?"

कु चिक वोला—

"प्रमाण कैसे दिया जाए ? रगे हाथो आपको खोदते पकडता तो प्रमाण भी देता। जैसी चोरी आपने की है, ऐसी चोरी का प्रमाण तो कोई भी नही दे सकता।"

"सुबुद्धि मत्री ने दिया था।" मुनिपति मुनि ने कहा--"एक सेठ की पुत्री ककु ने ऐसी चोरी की थी कि उसका भी प्रमाण नही दिया जा सकता था । पर दूध-का-दूध और पानी-का-पानी करने वाले बुद्धिनिधान सुबुद्धि मत्री ने ककु की चोरी सबके सामने प्रमाण देकर खोल दी थी।"

"सुबुद्धि ने कैसे दिया था प्रमाण ?" कुचिक बोला—"उसका दृष्टान्त सुनकर शायद मुझे भी कोई युक्ति सूझ जाए और मैं आपका दोष सिद्ध कर सकू । आप मुझे ककु की चोरी का प्रमाण सुनाइए।"

मुनि मुनिपति महामत्री सुबुद्धि की सूझ और दूर-दर्शिता का प्रमाण सुनाने लगे। इस समय श्रेष्ठी कुचिक का पुत्र धनमित्र भी मुनिकथित दृष्टान्त सुनने बैठ गया था ।

★ ★ ★ १६

चम्पकमाला नगरी के राजा थे, वसुपाल और उनकी रानी का नाम वसुमती था। राजा तो राजा थे ही, पर उनका महामात्य भी हजारो मे एक था। बडी से बडी पेचीदी और उलझी हुई समस्याएँ सुलझाने मे वह एक ही था। मत्री के इसी गुण के कारण राजा वसुपाल का न्याय-विभाग सर्वाधिक प्रशसा पाता था।

न्याय किसे कहे, इसके विषय मे तरह-तरह की बाते होती हैं। कोई कहते है कि वादी-प्रतिवादी—जहाँ दोनो पक्ष सतुष्ट हो जाएँ वही न्याय है। पर यह कुछ ऊँचे स्तर की बात रही। सामान्य चोर-ठग दण्ड पाने पर सतुष्ट कैसे होगे ? मत्री सुबुद्धि का कहना था कि न्याय को साक्षियो और गवाहियो के आधार पर कभी नही तौलना चाहिए। ये सब निर्जीव पहलू है। असली चीज है, अपराधी के हृदय की पकड। जहाँ उसका हृदय पकड लिया जाता है, वहाँ उसका मस्तिष्क बौखला जाता है। फिर उसे दण्ड पाने की न तो ज्यादा झेप होती है और न असतोष। ऐसी स्थिति मे ही अपराधी का हृदय-परिवर्तन भी हो जाता है।

□ □ □

चम्पकमाला नगरी मे रहने वाले सभी खुशहाल

थे। न्यायप्रिय और प्रजावत्सल राजा, सोने मे सुगध, दूरदर्शी और कुशल प्रशासक मत्री, प्राकृतिक सम्पदा, जहाँ ये सव हो वहाँ की प्रजा भला सुखी क्यो न होगी ? चम्पकमाला मे धनी-मानी सेठ-साहूकार रहते थे। इन्ही मे थे श्रेष्ठी अभिनव और श्रेष्ठी धनपाल। शुरू-शुरू मे दोनो छोटे दुकानदार थे। इनकी दुकाने भी पास-पास थी, और घर से भी दोनो पडोसी थे। दो पडोसियो को तो मित्रभाव से रहना ही चाहिए, सो ये दोनो मित्रवत् ही रहते थे। फिर दोनो का व्यवसाय भी एक जैसा था। वस्त्र-वीथी मे दोनो की कपडे की दुकाने थी।

एक दिन दोनो वडी देर तक खाली बैठे रहे तो अभिनव ने धनपाल से कहा—

"आज तो वडा मदा वाजार है, सबेरे से एक भी ग्राहक न तुम्हारी दुकान पर आया, न मेरी पर।"

"ग्राहक तो दोनो की पर ही आये थे।" धनपाल ने हँसकर कहा—"पर लौट गये। माल नही विका।"

"यह भी कोई आना है।" अभिनव वोला—"ग्राहक न आने का मतलव ही यह है कि माल नही विका।"

"भैया अभिनव ! ग्राहकआकर करे भी क्या ?" धनपाल ने कहा—"हमारी दुकानो पर वह माल ही नही है, जो ग्राहक चाहते है। अव शोभाचार वढ रहा है, सो सव चीन की रेशम चाहते है। उत्तरीय हो तो रेशम का और अन्तरीय हो तो वह भी रेशम का। अव सूत तो गाँवो मे ही रह गया है।"

"कछ वडे व्यापारियो ने हमारा धन्धा ठप्प किया

है।"अभिनव बोला—"चम्पकमाला के लोग पहले तो सूत ही पहनते थे।"

"खैर, ये बातें छोड़ो।" अभिनव बोला—"अकेले तो न तुम्हारे पास पूँजी है और न मेरे पास। हम दोनो साझे मे व्यापार करे तो कैसा रहे? दोनो किसी बडे सार्थ के साथ चीन चलें और वहाँ से रेशमी वस्त्र लाये।"

"आज तुम मेरे घर आ जाना।" धनपाल ने कहा--"मैं ककु की माँ से भी सलाह कर लूँगा। तुम भी सुन्दरी की माँ से सलाह करना।"

"तुम भी क्या कहने लगे मित्र!" अभिनव बोला---"पुत्र-पुत्री की शादी मे तो पत्नियो से सलाह करना ठीक भी है। व्यापार मे स्त्रियो से क्या पूछना?"

"अब तुमसे क्या छिपाना?" धनपाल ने अभिनव से कहा—"मेरी पूँजी तो ककु की माँ ही है। क्योकि यदि उसने अपने आभूषण दे दिये तो मैं तुम्हारे साथ साझी हो जाऊँगा।"

"जैसा ठीक समझो।" कहकर अभिनव चुप हो गया। शाम को अपनी-अपनी दुकाने बन्द करके दोनो घर गए। खाना-पीना खाने के बाद धनपाल ने अपनी पत्नी से व्यापार की भूमिका बताकर उससे उसके आभूषण माँगे। इस पर वह बोली—

"ये आभूषण मै नही दूँगी। स्त्री अपने आभूषण या तो पुत्रवधू को देती है या फिर अपनी पुत्री को। पुत्र तो

हमारे कोई है नही। एक कन्या है। उसे फिर मैं क्या दूँगी ?"

"तुम तो वडी भोली हो कंकु की माँ !" धनपाल ने कहा—"अभी तो कंकु पाँच-छह साल की है। जव तक यह विवाह योग्य होगी, तव तक तो मैं उसके लिए दूसरे—इनसे भी अच्छे रत्न-जटित आभूषण वनवा दूँगा।...फिर अभिनव को भी तो अपनी सुन्दरी का विवाह करना होगा। उसकी पुत्री सुन्दरी भी तो कंकु की ही वरावर है। उसकी पत्नी भी तो उसे अपने आभूषण देगी।"

"यदि सुन्दरी की माँ दे देगी तो मैं भी दे दूँगी।"

"हाँ, यह ठीक है।" धनपाल वोला—"अभिनव यही आयेगा।"

यह रात वीती। सवेरा हुआ। अभिनव स्वय ही धनपाल के घर पहुँचा। दोनो वैठे। अभिनव ने ही वात शुरु की—

"मैं तो तैयार हूँ। तुम्हारा क्या इरादा है ?"

"मैं भी तैयार हूँ।" धनपाल ने कहा—"दो दिन मे मैं पूँजी का प्रवन्ध कर लूँगा।"

निश्चय पक्का हो गया। अभिनव के पास जमा पूँजी थी, सो उसको अपनी पत्नी के आभूषण नही वेचने पड़े। धनपाल ने पत्नी के आभूषण वेचकर पूँजी इकट्ठी की। दोनो मिलकर चीन गये। रेशम लाये। पहली खेप तो हाथो हाथ विक गई। फिर गए। व्यापार वढ गया।

अब साझे की गोदामे भी थी। अभिनव और धनपाल चम्पकमाला नगरी के जाने-माने श्रेष्ठी हो गये।

जैसे धनपाल और अभिनव मे मित्रता थी, वैसी ही मित्रता धनपाल की पुत्री ककु और अभिनव की पुत्री सुन्दरी मे भी हो गई। दोनो बारह-बारह साल की थी। सग-सग रहती, उठती-बैठती और कभी-कभी अपने विवाह की बाते भी कर लेती।

धनपाल और अभिनव का व्यापार बढ जाने के कारण अलग-अलग हो गया था। दोनो के नौकर-चाकर मुनीम आदि सब अलग-अलग थे। व्यापार बँटा था, पर दिल नही बँटे थे। दोनो अब भी पहले की तरह आपस मे मिलते, एक दूसरे के घर आते-जाते, पर अब व्यस्तता अधिक थी, सो मिलने-मिलाने के अवसर कम ही आते थे।

दोनो मित्र समान रूप से बढे-चढे थे, पर भाग्य ने ऐसा पलटा खाया कि धनपाल की बधिया बैठ गई। उसके गोदामो मे आग लग गई। घाटे के अथवा दिन गिरने के कुछ तो बहाने होते ही है। अब धनपाल अभिनव से कपडा उधार लेकर अपनी छोटी दुकान पर बेचता। उसने कुछ दिन की खुशहाली देखी, फिर ज्यो का त्यो हो गया।

ऐसी स्थिति मे धनपाल की पत्नी ने एक दिन कहा—

"अब तो आप बनवा ही नही सकते। जब आप सोने मे खेलते थे, तब आपने आभूषण नही बनवाये तो अब क्या बनवाओगे?"

"भाग्य का पता किसे होता है?" धनपाल ने कहा—"मुझे क्या पता था कि भाग्य यो धोखा देगा, वरना पहले तेरे आभूपण ही वनवा देता।"

"मुझे आभूपणो का कोई चाव नही है।" धनपाल की पत्नी ने कहा—"पर अभिनव की बेटी सुन्दरी सदा रत्न-जटित आभूपण पहने रहती है और मेरी ककु सूनी-सूनी रहती है। इसका मलाल मेरे दिल मे सदा रहता है।"

"तो क्या किसी की होड की जाती है?" धनपाल वोला—"ककु का जव व्याह होगा, तव उसे उसकी सुस-राल से मिल जाएँगे।"

"तो क्या पीहर मे लडकियाँ नगी रहती है?" धनपाल की पत्नी ने विगडकर कहा—"अपने तव अभि-नव की होड क्यो की थी? वह इतना चालाक है कि जमा पूँजी लेकर गया और आभूषणो से हाथ नही लगाया। आपने क्यो उसके साथ चीन जाने को होड की। मेरी वेटी को तो अभिनव ने ही नगी किया है।"

धनपाल को भी लगा कि अभिनव ने मेरे साथ धोखा किया है। वह सोचने लगा—'मैने उसे अपने हृदय की वात वता दी थी कि मैं आभूपण बेचकर जा रहा हूँ। पर उसने गन का भेद नही दिया। अब भी तो यह नही सोचता कि उसे वरावर लाभ हो रहा है तो मेरी कुछ मदद कर दे। उसकी मित्रता दिखावटी है। जव तक दोनो की हैसियत एक-सी न हो, तव तक कैसी मित्रता।'

धनपाल यह सव सोच ही रहा था कि ककु भी वहाँ आ गई। धनपाल ने उससे कहा—

'वेटी ककु ! तू सुन्दरी के साथ ज्यादा मत रहा कर। अव वह वडे वाप की वेटी है। आभूषण पहनकर रहती है। तू सूनी-सूनी रहती है।"

"मेरा नाम भी ककु है।" ककु ने कहा—"वहुत दिनो से उसके आभूपण खटक रहे है। मुझे यह भी मालूम है कि उसी के वाप ने आपसे मेरी माँ के आभूपण विकवाये हे। अव मैं उसके पास सोने की एक कील भी नही रहने दूँगी।"

"ऐसा मत करना।" धनपाल ने कहा—"पकडी गई तो वडी फजीहत होगी।"

"इसकी आप चिन्ता न करे।" कहकर ककु उठ गई। अव वह इस अवसर की तलाश मे थी कि सुन्दरी के आभूषण मैं कव छीनूँ।

☐ ☐ ☐

ककु सुन्दरी के घर पहुँची और उसने सुन्दरी से कहा—

"सखी री ! आज तो वावडी मे स्नान करने चले। आज गरमी भी वहुत है।"

"पर मै तो नहा चुकी।" सुन्दरी ने कहा-"तूने पहले क्यो नही वताया ?"

"तो अव क्या हो गया ?" ककु वोली—"वावडी मे नहाने का उद्देश्य सदा गौण होता है। मुख्य वात जल-क्रीडा की होती है। दूसरी वार फिर नहा लेगी तो क्या हो जाएगा। दो वार नहाना तो वैसे भी ठीक है।"

"दो वार नहाना ठीक तो है।" सुन्दरी वोली—"पर

सुवह-शाम का ठीक है। नहाने के बाद नहाना तो एक ही बार का नहाना हुआ। दो बार नहाने की यह कहावत मुझे सदा याद रहती है—"प्रात. साय जो नित्य नहाय। वा घर वैद्य कभी ना जाय।"

"तो अब ?" ककु ने पूछा।

"चलूँगी।" सुन्दरी बोली—"तुम जैसी सखी के लिए तो दस बार नहा लूँगी।"

ककु और सुन्दरी—दोनो नगरी से कुछ दूर एक बाग मे बनी बावडी मे जल-क्रीडा करने गई। दोनो ने अपने-अपने कपडे उतारे और जल मे पैठ गई। दोनो एक-दूसरी के ऊपर जल के छीटे मारती। कभी एक-दूसरी को जल मे ही छूने की कोशिश करती और कभी इस बात की बहस होती कि जल मे कौन देर तक डूबी रहे।

दोनो ने एक साथ डुबकी लगाई। ककु तुरन्त बाहर निकली और सुन्दरी के कपडे वही छोड उसके आभूषण लेकर सीधी अपने घर को चल दी। इधर सुन्दरी जल से बाहर निकली तो ककु को न पाकर बोली—

"अच्छा तू बडी चालाक है। एक बार पहले निकल-कर दुबारा डुबकी लगा ली है। अच्छा, अब की बार दोनो हाथ पकडकर डुबकी लगायेगी, तब देखूँगी कि कौन देर से निकलती है।

बडी देर हो गई। पर ककु नही निकली। जब वह थी ही नही, तो निकलती कहाँ से ? सुन्दरी को सदेह हुआ कि कही डूब तो नही गई। पर वह तो तैरना खूब जानती है। तब ? तभी बावडी की सीढियो पर चढने

की निशानी गीले पदचिन्ह देख सुन्दरी समझ गई कि ककु निकल गई है। पर चुपचाप क्यो निकली ?

सुन्दरी बाहर आई। उसके कपडे वही थे, पर आभूषण गायब थे। वह सब कुछ समझ गई। अब कही भी इस सन्देह की गु जाइश नही थी कि मेरे आभूषण कहाँ है। सुन्दरी ने अपने घर जाकर अपने माता-पिता को सब बाते बता दी। उसकी माता ने कहा—

"तो यह तो उसका इरादा था। तभी तो वह यहाँ सुन्दरी को ले जाने के लिए बहुत पीछे पड रही थी।"

पूरी बात सुनने-समझने के बाद अभिनव ने कहा—

"आभूषण चले जाना ज्यादा दु.ख की बात नही है। ककु भी अपनी बेटी के समान है। पगली, मुझसे कहती तो मैं उसके लिए ऐसे ही और बनवा देता। खैर, मैं उसके पिता के पास जा रहा हूँ। वह उसे डॉट देगा। मेरा डॉटना ठीक नही। घर की-सी बात है।"

अभिनव सुन्दरी को लेकर धनपाल के पास गया। धनपाल को पहले ही सब कुछ मालूम पड गया था। ककु ने सुन्दरी के आभूषण अपने पिता धनपाल को ही सौंप दिये थे। आभूषण देख धनपाल की नीयत डिग गई। उसने सोचा कि मेरे आभूपण अभिनव ने ही बिकवाये थे। अब मैं इन्हे नही लौटाऊँगा।

अभिनव आया। धनपाल ने रूखे ढग से बैठने को कहा। अभिनव सहज भाव से बैठा और पूरी बात बताकर कहा—

"उस पगली ककु को बुलाओ तो। उससे पूछूँ तो सही कि उसने ऐसा क्यों किया।"

"उससे कुछ भी पूछने की जरूरत नहीं है।" धनपाल ने कहा—"जो कुछ तुमने सुनाया है, वह रात का सपना सुनाया है। यह बताओ यह सपना तुमने देखा तुम्हारी बेटी सुन्दरी ने।"

'तुम तो बहुत गिर गए धनपाल!' उठते-उठते अभिनव ने कहा—"यदि तुम माँगते तो सच कहता हूँ, मैं ये आभूषण तुम्हे तुरन्त दे देता। पर अब तो लेकर रहूँगा। ऐसा नहीं हो सकता कि तुम माल भी दबाओ और शाह भी बनो।"

"झगडा करने के इरादे से आये हो तो झगडा ही कर लो।" धनपाल भी उठकर खडा हो गया—"तुम्ही आभूषण रख सकते हो? मै तो जैसे आभूषण रखना जानता ही नही? ये देखो आभूषण।" धनपाल ने सुन्दरी के चुराये आभूषण दिखाकर कहा—"ये मेरी बेटी ककु के हैं।"

अभिनव चुपचाप चला गया। वह सीधा राजसभा पहुँचा और राजा वसुपाल के न्याय-पीठ मे पूरी बात रख दी। राजा मुस्कराये और मन्त्री सुबुद्धि से बोले—

"वाद बडा जटिल है। बिना प्रमाण के यह कैसे सिद्ध होगा कि आभूषण ककु के है या सुन्दरी के?"

"कोई एक तो झूठा है ही।" सुबुद्धि ने कहा—"अभी सब स्पष्ट हो जाएगा।"

मत्री सुबुद्धि ने धनपाल और उसकी पुत्री ककु को आभूषणो सहित बुलवाया। दोनो आये। अभिनव और सुन्दरी वहाँ थे ही। मत्री ने सब आभूषण ले लिये। एक हार उठाकर पहले अभिनव से पूछा—

"श्रेष्ठी अभिनव ! यह हार कितने भार का है और इसकी बनवाई तुमने स्वर्णकार को क्या दी थी ?"

"यह सब याद नही है मत्रिवर !" अभिनव ने कहा— 'मेरी माँ ने ये सब आभूपण मेरी पत्नी को दिये थे। पत्नी ने अपनी बेटी सुन्दरी को दे दिये। इतनी पुरानी बात कैसे याद रहे ?"

"लगता है ये आभूषण तुम्हारे नही हैं।" मत्री ने कहा—"यह सब बहानेबाजी है कि पुरानी बात कैसे याद रहे।"

"क्यो धनपाल ! तुम बता सकते हो ?" मत्री ने धनपाल से पूछा।

"ये सभी आभूषण मेरी पत्नी को उसके पीहर से मिले है।" धनपाल ने कहा—"यदि आप इजाजत दे तो पत्नी को पूछकर बता सकता हूँ।"

"तुम्हारी बात कुछ दमदार है।" मत्री ने धनपाल से कहा—"अपनी बेटी को हमारे पास भेजो।"

ककु मत्री के पास पहुँची। मत्री ने उसके सामने आभूषण रखकर कहा—

"बेटी ! ये आभूषण तुम्हारे है या सुन्दरी के ?"

"मेरे हैं। सुन्दरी के आभूषणो से मुझे क्या मतलब ?"

"तो इन्हे तुम विशेष अवसरो पर पहनती हो ?" मत्री ने पूछा—"या रोज पहना करती हो ?"

"मैं इन्हे रोज पहनती हूँ।" ककु बोली—"हाँ, रात को उतार देती हूँ।"

"ये सब आभूषण लेकर आड मे चली जाओ।" मत्री ने कहा—"सब पहनकर मुझे दिखाओ। मैं देखना चाहता हूँ कि तुम्हे कैसे लगते हैं।"

ककु आड मे आभूषण पहनने लगी। पर कैसे पहने ? उसे अभ्यास ही नही था। वह तो अब पहली बार पहन रही थी। बावडी से तो यो ही बिना पहने लेकर भागी थी।

सुन्दरी और ककु के अगो की सुडौलता, मासलता और नाप मे भी अन्तर था, सो ककु ने जो भी आभूषण पहने थे सही नही बैठे। कोई-कोई उसने उल्टा भी पहन लिया। कौन आभूषण कहाँ का है, इसका ज्ञान भी ककु को नही था।

ककु जब आभूषण पहनकर आई तो मत्री उसे देखकर मुस्कराया। अभिनव और सुन्दरी भी मुस्कराये। मत्री ने ककु से कहा—

"बेटी ! अब इन्हे उतारकर सुन्दरी को दे दो। अब यह पहनेगी।"

आभूषण लेकर सुन्दरी भी आड़ मे गई। वह जब पहनकर आई तो मत्री ने उससे कहा—

"बेटी ! अब तुम अपने पिता के साथ घर जाओ।"

फिर ककु से कहा—

"बेटी ! तुम्हे तो अव यही अपने पिता के साथ कारा-गार मे रहना है। अव तो तुम भी समझ गई कि तुम्हे कारागार मे क्यो रहना है।"

□ □ □

कथा को समाप्त कर मुनि मुनिपति ने कुचिक सेठ से कहा—

"कुचिक ! जैसे सुबुद्धि ने ककु का अपराध अथवा उसकी चोरी प्रत्यक्ष करके प्रमाणित कर दी थी, वैसे ही तुम भी प्रमाणित करो कि मैंने ही तुम्हारा धन लिया है। अनेक बार ऐसा होता है कि दीखता कुछ है और होता कुछ है। क्या अँधेरे मे रस्सी साँप नही लगती ? मेरे यहाँ रहने के कारण ऐसी ही भ्राति तुम्हे भी हो गई है कि तुम्हारे धन का चोर मैं ही हूँ।"

कुचिक बोला—

"हे मुने ! चतुर चोर ऐसी-ऐसी बाते सुनाते है कि एक बार तो सभी को मानना पडता है कि यह चोर नही है। पर मैं आपको वातो मे नही आ सकता। दृष्टान्त-पर-दृष्टान्त सुनाकर आप मुझे चक्कर मे डालना चाहते हैं। पर मैं जो जान चुका हूँ, उसे भुला नही सकता।

"मुने ! एक दरिद्री ब्राह्मण ने धनो वनने पर जैसे दुर्गा मूर्ति का तिरस्कार किया था, वैसे ही आपने ठीक होने पर मेरी उपेक्षा करके मेरा धन छिपा दिया।"

"ब्राह्मण ने क्या किया, सो कुछ स्पष्ट कहो।" मुनि-पति मुनि ने कुचिक से कहा—"उसे सुनकर ही आगे कुछ कहूँगा।" □

मनुष्य के जव स्व-कृत पाप उदय मे आते है तो रोग, चोरी आदि से उसे व्यथा पहुँचती है। पर जव देश या समाज का पाप फलता है तो अकाल-दुकाल पडते है या महामारी फैलती है। मगध देश यो तो उर्वरा भूमि वाला और खनिज सम्पदा से सम्पन्न था, पर एक वार उस देश के एक क्षेत्र मे अकाल पड गया।

खडी-की-खडी और पकी फसल टिड्डी दल चाट गया। एक दाना नही वचा। गाँवो के लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। पछता-पछताकर सव कहते थे—

"हाय! कैसी अच्छी फसल थी। इस वार तो वही कहावत चरितार्थ हो गई कि 'हरी खेती और गाभिन गाय तव जानो जव घर मे जाय।' घर तक जाते-जाते फसल पर जाने कितनी वाधाएँ छायी रहती है।"

लोग भूखो मरने लगे। पेडो की पत्तियाँ, छाले, वथुआ आदि खा-खाकर अगली फसल तक के दिन गाँव वाले काट रहे थे। अकाल पीडित गाँव का एक भिक्षा-जीवी ब्राह्मण और भी ज्यादा परेशान था। उसे तो अव भीख भी नही मिलती थी। किसके घर मे इतना चून था जो एक चुकटी उसे दे ले।

एक दिन पडे-पडे ब्राह्मण ने भिक्षार्जन की एक युक्ति

सोच ली कि लोगो के मन मे पूजा-उपासना अथवा देवी, देवो के प्रति जो विश्वास है, उससे लाभ उठाना चाहिए। यह सोच, ब्राह्मण ने लकडी की एक प्रतिमा दुर्गा देवी की वनवाई। उसे घी मिश्रित सिन्दूर से रजित किया और गाँव-गाँव घूमने लगा। वह जोर-जोर से यही कहता फिरता था—

"मनोकामनाएँ पूरी करो। देवी के कोप से अकाल पडा है। इस वार देवी की पूजा करोगे तो अगली फसल वच जाएगी। वरना दुकाल अर्थात् दो वार का अकाल भी पड सकता है। देवी के दर्शन करके तुम कुछ माँगो तो तुम्हारी व्यक्तिगत मनोकामनाएँ भी पूरी होगी।"

वालक, अवला यानी स्त्री और वृद्ध—ये तीनो तीन तरह की प्रकृति के होते है। वालक मे न तो वल होता है और न वुद्धि। स्त्री मे जोश तो होता है, पर वुद्धि नही होती। वृद्ध मे वुद्धि होती है, पर वल नही होता। यदि यह अफवाह फैलाई जाए कि प्रत्येक स्त्री आधी रात को नदी मे स्नान करे, नही करेगी तो अमुक देवी कुपित होगी। तो सभी स्त्रियाँ आधी रात को ही नहा लेगी वे सोचेगी ही नही कि देवी क्यो कुपित होगी।

इसी तरह उक्त ब्राह्मण की वाते स्त्रियो को अधिक विश्वसनीय लगी। झुण्ड की झुण्ड स्त्रियाँ दुर्गा की काष्ट प्रतिभा के दर्शन करती। अपने और अपने वच्चे के सिन्दूर टीका लगवाती तथा कुछ-न-कुछ उसे अवश्य देती। एक निस्सतान महिला उसे अपने घर ले गई। उसने चाँदी की एक मुद्रा भेट करके देवी से कहा—

"हे देवी ! यदि मेरी गोद भर गई तो मैं इन पडितजी को जाने क्या न दे दूं।"

तीर मे तुक्का ऐसा लगा कि उक्त महिला गर्भवती हो गई। यदि कोई अनपढ-गँवार वैद्य का नाटक करके बैठे और सौ रोगियो को राख की पुडिया बाँटे तो उन सौ मे से इक्यावन रोगी ठीक हो जाएँगे, उन्चास नही। विश्वास का प्रभाव ऐसा ही होता है। अब तो बहुतो की इच्छाएँ पूरी होने लगी। एक की गाय ने बछडा दिया तो वह भी देवी की मान्यता का प्रभाव माना गया। जिस की इच्छा पूरी नही होती, उसके लिए ब्राह्मण कह देता कि अभी तुम्हारे कर्म ज्यादा खोटे है। चढावा चढाती रहो। कभी तो देवी का हृदय पसीजेगा।

मूल बात यह कि लोगो की, मुख्यत स्त्रियो की श्रद्धा विश्वास का लाभ उठाकर ब्राह्मण मालामाल हो गया। निस्सतान स्त्री जब पुत्रवती बन गई तो उसके पति ने बहुत दिया। अगली फसल भी अच्छी हो गई तो ब्राह्मण की मान्यता और बढ गई। अब ब्राह्मण बहुत धनी हो गया।

धनी ब्राह्मण ने दुर्गा की काष्ट प्रतिमा को यो ही कही फेंक दिया या नदी मे प्रवाहित कर दिया और सोने की प्रतिमा बनवा ली।

कचिक श्रेष्ठी ने मुनि मुनिपति से कहा—

"मुनिवर ! ब्राह्मण काष्ट प्रतिमा की बदौलत धनी बना था। पर धनी बनने पर उस कृतघ्न ने काष्ट प्रतिमा

की उपेक्षा करके सोने की वनवा ली। यदि काष्ट की ही न होती तो सोने की वन ही नही सकती थी।

"तो मुने! कृतघ्न लोग काम निकल जाने पर ऐसे ही उपेक्षा कर देते है। आपने भी काम निकल जाने पर मेरी उपेक्षा करके मेरा धन ..।"

"वार-वार समझाने पर भी समझ मे सचाई नही आती।" मुनि वोले—"पर मैं अपना प्रयत्न नही छोडूगा और तुझे समझाता ही रहूँगा। यदि ससार मे लोग व्राह्मण जैसे कृतघ्न होते है, तो धर्मात्मा जिनदत्त जैसे परोपकारी भी होते है। मैं तुझे जिनदत्त का दृष्टान्त सुनकर वताऊँगा कि धार्मिक जन कृतघ्न व्राह्मण जैसे न होकर परोपकारी जिनदत्त जैसे होते हैं।" □

वसन्तपुर के राजा थे जितशत्रु । उन्होने वाहरी ही नही, काम-क्रोधादि भीतर के शत्रुओ जीतने की दिशा मे भी कुछ प्रयास किया था। यो उनका जितशत्रु नाम सार्थक-सा लगता था। वे प्रजावत्सल और गुणग्राही राजा थे। स्वय धार्मिक और धर्मप्रेमी भी थे कि वारह व्रती श्रावको का वहुत मान करते थे।

राजा जितशत्रु की सभा मे श्रेष्ठी जिनदास और उनके पुत्र जिनदत्त—दोनो का ही सम्मान था । पिता-पुत्र दोनो ही सम्यक्त्वी, श्रमणोपासक और जन-जन के प्यारे श्रावक थे। पर पुत्र जिनदत्त तो पिता से इतना आगे था कि उसने विवाह न करने का ही निश्चय कर लिया।

जिनदत्त युवा होने पर भी यौनाकर्षण से दूर था। वैराग्य भाव उसके हृदय मे इतना प्रबल था कि किसी स्त्री की ओर दृष्टि उठाकर भी नही देखता था। उसने अपने हमउम्र के मित्रो से कह रखा था कि विवाह करने के बाद दीक्षा लेने मे झंझट खड़ा होता है। जब मुझे दीक्षा लेनी ही है तो क्यो किया जाए विवाह?

एक दिन जिनदास ने उसे समझाया—

'पुत्र! पितृऋण से निवृत्त होने के लिए तो तेरा विवाह करना जरूरी है। जैसे तू मेरा पुत्र है, वैसे ही

तेरे भी एक पुत्र होना चाहिए। फिर दीक्षार्थी को कुआरा रहना क्या जरूरी है ? विवाह के बाद समय आने पर कौन दीक्षा नही लेता ?"

"पितृऋण की वात अपने खूब कही।" जिनदत्त ने हँसकर पिता जिनदास से कहा—"ससार का कोई कार्य, कोई सेवा करके पुत्र माता-पिता के ऋण से मुक्त नही हो सकता। इसका तो एक ही मार्ग है कि पुत्र पिता को धर्म की शरण दिला दे और पण्डितमरण मे सहायक बने।

"पिताजी! आप तो धर्म के मर्म को समझते है। आप से ज्यादा क्या कहना ? पर विवाह के लिए मेरी तनिक भी इच्छा नही है। विना इच्छा के विवाह भार वन जाएगा।"

'कभी तो इसकी इच्छा होगी।' यह सोच जिनदास मौन हो गये। उन्होने जिनदत्त के मित्रो को समझा दिया कि जैसे भी हो, जिनदत्त के मन मे स्त्री के लिए आकर्षण प्रेम पैदा करके इसे विवाह के लिए तैयार करो। जिनदत्त के मित्र भी सदा इस प्रयास में रहते कि अवसर मिलने पर इसमे नारी के प्रति अनुराग पैदा किय जाए।

एक वार जिनदत्त नगर से वाहर उद्यान स्थित स्थानक मे सामायिक करने गया। स्थान अधिक एकान्त का था, क्योकि यहाँ कम लोग ही सामायिक-प्रतिक्रमण करने आते थे। जिनदत्त के साथ उसके दो मित्र भी थे सामायिक करने के वाद जिनदत्त जव स्थानक से वाह

आया तो उसने एक सुन्दर पोडशी कन्या को भीतर जाते देखा। कन्या ने भी उसे देखा। दोनो एक दूसरे के प्रति आकर्पित भी हुए। मित्रो ने हाथ पकडकर जिनदत्त को बैठाया। दोनो ने इधर-उधर की वाते करना शुरू कर दिया। वडी देर तक वाते होती रही। इसी वीच सामायिक आदि करके उक्त सुन्दरी स्थानक से निकली तो जिनदत्त उसे देखता रह गया। उसने मित्रो से पूछ ही लिया—

"मित्रो ! यह लडकी किसकी पुत्री है ?"

"क्यो पसन्द है ?" एक ने चुटकी ली—"मैं इसके माता-पिता को जानता हूँ। तुम कहो तो आज ही वात करूँ।"

"तुम तो पागल हो ?" जिनदत्त ने कहा—"इसकी धार्मिक वृत्ति और धर्मरुचि देखकर ,मैं इसका परिचय जानना चाहता था। यहाँ इतनी दूर सामायिक करने हरेक नही आ सकता।"

"इसीलिए तो तुम्हारे जोड की है।" दूसरे मित्र ने कहा—"तुम भी यहाँ नगर से वाहर सामायिक करने आये हो और यह भी आई है। सवसे वडी वात तो यह है कि इसका नाम भी जिनमती है। जिनदत्त और जिनमती की जोडी क्या विधाता की वनाई नही मानी जाएगी ?"

"पहले इसका परिचय तो देने दो।" दूसरे मित्र ने जिनदत्त से कहा—"जिनदत्त ! हमारे वसन्तपुर मे प्रिय-

मित्र नाम के एक सेठ रहते है। बहुत भले आदमी हैं। यह जिनमती उन्ही की सुयोग्य पुत्री है। वे निश्चय ही तुम्हे जामाता बनाकर बडे खुश होगे। मैं आज ही उनसे बात करूँगा।"

"विवाह के सम्बन्ध मे कोई बात मत करना।" जिनदत्त ने दोनो मित्रो से कहा—"तुम लोग बिल्कुल गलत समझे हो। किसी का परिचय पूछ लेने का मतलब क्या विवाह करना है ? विवाह मैं हरगिज नही करूँगा।"

जिनदत्त के दोनो मित्र चुप हो गए और बोले—

"अच्छा, मत करना विवाह। अब घर चलो।"

तीनो उठकर चल दिये। जिनदत्त के मित्रो ने सोचा, 'जब इतना है तो इतना और हो जाएगा। पहले तो यह किसी लडकी की ओर देखता ही नही था। बात तक नही करता था। आज स्वय ही परिचय पूछा। परिचय क्या बिना आकर्षित हुए पूछा जा सकता है ? पहली बार इसका इन्कार करना स्वाभाविक भी है। धीरे-धीरे हॉ भी कर लेगा।'

ऐसा सोचते हुए जिनदत्त के मित्र उसके पिता जिन-दास के पास पहुँचे और पूरा प्रसग बताने के बाद कहा--

"हम प्रियमित्र सेठ के पास जाते है। उनकी जिन-मती जिनदत्त पर अनुरक्त है, ऐसा हमने भॉप लिया है। वे अपनी पुत्री का विवाह प्रस्ताव लेकर आये तो आप स्वीकार कर लेना।"

"स्वीकार तो कर लूगा।" जिनदास ने जिनदत्त के मित्रो से कहा—"पर बाद मे जिनदत्त ने इन्कार कर

दिया तो मेरा मरण ही समझो । क्योकि विवाह का वचन देकर लौटना पुरुषो का काम नही होता ।"

"ऐसी नौवत नही आयेगी ।" जिनदत्त के मित्रो ने जिनदास से कहा—"जिनदत्त का इन्कार अव हमे तो ऊपरी लगता है ।"

इस तरह जिनदत्त के मित्रो ने उसके पिता को खूव समझाकर पक्का कर लिया । वह तो अपने पुत्र का विवाह पुत्र के मित्रो के सहयोग से चाहता ही था । अत. उनकी वात कैसे टालता ?

इधर जिनदत्त के मित्र श्रेष्ठी प्रियमित्र के पास पहुँचे और जिनमती का विवाह जिनदत्त के साथ कर देने की वात कही । जिनदत्त की धार्मिकता, शील-स्वभाव और सुन्दरता भी वसन्तपुर मे प्रसिद्ध थी । राजा जित-शत्रु तक उसे मान देते थे । जिनदत्त के साथ अपनी पुत्री के विवाह की वात सुनते ही श्रेष्ठी प्रियमित्र वोले—

"यह वात तो मेरे मन मे स्वत. ही आनी चाहिए थी । इन दोनो की जोडी तो पहले से वनी-वनाई है । दोनो ही धार्मिक है । खूव पटेगी ।"

"यह सव सयोग होता है ।" जिनदत्त के एक मित्र ने श्रेष्ठी प्रियमित्र से कहा—"दोनो ने आज सयोग से ही एक दूसरे को देखा और प्रभावित हुए ।"

वडी देर तक वाते हुई । फिर श्रेष्ठी प्रियमित्र नारि-यल और पूगीफल लेकर श्रेष्ठी जिनदास के यहाँ पहुँचे और विवाह पक्का कर आये । दोनो घरो मे मिठाइयाँ वाटी गई । लेकिन जव जिनदत्त को पता चला तो उसने

स्पष्ट इन्कार कर दिया कि मुझे विवाह नही करना है। जिनदत्त के शब्दो मे दृढता थी । उसके मित्र और माता-पिता सिहर उठे कि अब क्या होगा ।

इधर वसन्तपुर का नगर-रक्षक वसुदत्त बहुत पहले से ही जिनमती को देख चुका था। वह स्वय जिनमती के साथ विवाह करना चाहता था। पहले तो उसने यही चाहा था कि प्रियमित्र स्वय ही अपनी पुत्री का विवाह प्रस्ताव लेकर मेरे पास आये। इसके लिए उसने परोक्ष प्रयास भी किये थे। जब उधर से कोई आशा नही दीखी तो वसुदत्त स्वय ही प्रियमित्र के पास पहुँचा और स्पष्ट शब्दो मे जिनमती की माँग की। प्रियमित्र ने सोचा कि जब मिठास से ही काम निकले तो कडवाहट का सहारा क्यो लिया जाए? यह सोच प्रियमित्र ने वसुदत्त से कहा—

"आप नगररक्षक है। इतना ऊँचा राजकीय पद बड़े भाग्य से मिलता है। आपको जामाता बनाकर मुझे बडी प्रसन्नता होती। पर अब तो मेरे हाथ कट गये। जिनमती का विवाह जिनदत्त के साथ पक्का हो गया।"

"पक्का ही तो हुआ है।" वसुदत्त ने कहा—"अभी विवाह तो नही हुआ? आप जिनदत्त से इन्कार कर दीजिए और जिनमती का विवाह मेरे साथ कर दीजिए।"

"मै ऐसा स्वप्न मे भी नही कर सकता।" प्रियमित्र ने कहा—"जबान से बेटी-बेटा पराये होते हैं। हाँ, जन-

दत्त स्वय अपनी ओर से ही इन्कार कर दे या उनके पिता अस्वीकार कर दे तो मैं जिनमती की सलाह से आपके साथ विवाह कर सकता हूँ ।"

अव जिनदत्त वसुदत्त की राह का काँटा वन गया। इस काँटे को हटाने का मन-ही-मन सकल्प करके वसुदत्त प्रियमित्र के यहाँ से उठ गया।

इधर जिनदत्त की अस्वीकृति की वात प्रियमित्र और जिनमती के कानो तक भी पहुँच गई। प्रियमित्र चिंतित हुए। उन्होने अपनी पत्नी से कहा कि जिनमती से पूछना, अव वह क्या चाहती है। जिनदत्त तो सुनते हैं दीक्षा लेगा। हम तो कही के नही रहे।

जिनमती की माँ ने उसे सव स्थिति वताई और समझाया कि अव तो तुझे नगररक्षक वसुदत्त के साथ विवाह कर लेना चाहिए। या जिसे तू चाहे उसके साथ कर दे। जिनदत्त के साथ तो होने से रहा। सव कुछ सुनने के वाद जिनमती ने अपनी माँ से कहा—

"माँ ! विवाह की विधि पूरी होना—भाँवरे पडना ही विवाह नही है। आपकी ओर से वचनवद्धता की विधि पूरी हो ही गई। मन से मैंने उन्ही को अपना पति मान लिया है। अव मैं किसी और के साथ विवाह करने की सोच भी नही सकती, क्योकि पर-पुरुष का ध्यान स्वप्न मे भी करना पाप है।

"अव वे ही मेरे पति है और मैं उनकी पत्नी हूँ। मैं जीवन भर उनके सहारे—उनके नाम पर यहाँ वेठी

रहूँगी। जिस दिन वे दीक्षा लेगे, उस दिन मैं भी दीक्षा ले लूँगी।"

पुत्री की ऐसी दृढता देखकर उसके माता-पिता बडे प्रभावित हुए। फिर उन्होने कुछ भी कहना उचित नही समझा। इस ओर जिनदत्त को भी यह पता चला कि जिनमती हठ करके मेरे नाम पर ही कुमारी बैठी है। उसके मित्रो ने उसे समझाया भी—

"जिनदत्त! ऐसी निष्ठावती, शीलवती और धर्मनिष्ठा कन्या का तिरस्कार करना ठीक नही है। जिनमती यदि साधारण कन्या होती, तब तो तुम भले ही विवाह न करते। पर वह तो अडिग निश्चय वाली सती सन्नारी है। उसकी आत्मा को दुःख पहुँचाने से तुम पर कोई सकट भी आ सकता है।"

"तुम्हारी सब बाते ठीक है।" जिनदत्त ने कहा—"पर इसमे मेरा क्या दोष है? मैंने जिनमती से कब कहा कि तुम मुझे अपना पति मान लो?

"मित्रो! यह कुछ दिनो का उत्साह है। धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। वह स्वत ही मुझे भूल जाएगी। उसके लिए मैं विषयो मे फँसना नही चाहता।"

जिनदत्त भी अपने निश्चय पर अडिग था। इधर नगररक्षक वसुदत्त अपनी खिचडी अलग पकाता फिर रहा था। वह ऐसे अवसर की तलाश मे रात-दिन रहता था कि मैं नगर मे बदनाम करके जिनदत्त को यमलोक पहुँचा दूँ। एक दिन उसे ऐसा अवसर मिल ही गया।

राजा जितशत्रु एक दिन राजोद्यान मे वनभ्रमण को गए। साथ मे नगररक्षक भी था। उधर से जव लौटे तो उनका एक रत्नकुण्डल ग़ायव था। उनका हाथ अपने कान पर गया और नगररक्षक से वोले—

"कही कुण्डल गिर गया। जाकर देखो उद्यान मे ही होगा। उसे ले कौन सकता है। ढूढ कर लाओ।"

नगररक्षक उद्यान मे गया। उसे कुण्डल चमकता हुआ पडा मिल गया। ले कौन जाता ? जव नगररक्षक वसुदत्त उद्यान से चला तो मार्ग मे उसे जिनदत्त मिल गया। मानो विल्ली के भाग्य से छीका टूट पडा हो। वसुदत्त दौडकर जिनदत्त के पास आया और खडा करके उससे वाते करने लगा। वातो ही वातो मे उसके कपडो मे राजा का कुण्डल छिपाकर वोला—

"जिनदत्त ! तुम्हे राजा का कुण्डल मिला हो तो दे दो। तुम्हे ही मिला होगा। क्योकि इधर से तुम्ही आ रहे हो।"

"मुझे कुण्डल मिलता तो मैं सीधा राजसभा जाता।" जिनदत्त ने कहा—"मुझे नही मिला।"

"चोर कही के।" नगररक्षक ने एकदम रुख पलटा और आँखे निकालकर कहा—"अपनी तलाशी दो।"

रत्नकुण्डल जिनदत्त से ही वरामद हुआ। अव वह चोर था। राजा की दृष्टि मे भी और नागरिको की दृष्टि मे भी। अव जिनदत्त रँगा स्यार, पाखण्डी, वगुला भगत न जाने क्या-क्या उपाधियो से विभूषित था। हाँ,

कुछ समझदार अब भी उसे पहले जैसा अस्तेयी मानते थे।

पवन की तरह राजा को भी पलटते देर नही लगती। वसुदत्त ने नाटक ही ऐसा रचा कि राजा जितशत्रु पलट गया और जिनदत्त को शूली का आदेश दिया। वडा कठोर हो गया जितशत्रु। वध्य का जो वेश वनाया जाता है, उसके अनुसार जिनदत्त को रक्त चन्दन से चर्चित किया गया। उसके सिर पर लाल कपडा बाँधा गया और गले मे लाल कनेर की माला डाली गई। इस वध्य रूप मे पहले उसकी नगर-फेरी हुई, ताकि लोग जान ले कि चोरी का दण्ड प्राणदण्ड होता है।

नगर-फेरी के क्रम मे जिनदत्त प्रियमित्र श्रेष्ठी के घर सामने से भी गुजरा। उसकी दृष्टि स्वत ही ऊपर उठ गई। छत पर बैठी स्त्रियो के वीच साश्रुनयना जिनमती को जिनदत्त ने पहचान लिया। फिर उसे तुरन्त मित्रो की वात याद आ गई और सोचा—

"मेरे दुख के कारण इसकी आँखो के आँसू है। मैंने ऐसी निष्ठावती सन्नारी की उपेक्षा की इसीलिए मै मिथ्यारोप मे प्राणदण्ड पा रहा हूँ। मैं भारी भूल कर गया। अब यदि किसी तरह से मेरे प्राण बच जाते तो मैं इसके साथ विवाह अवश्य कर लेता।"

यो सोचता हुआ जिनदत्त वधस्थल पर ले जाया गया। इधर जिनमती ने छत पर बैठे-बैठे जिनदत्त को देख तुरन्त निश्चय किया कि यदि मैं मन-कर्म-वचन से पतिव्रता नारी हूँ तो अपने स्वामी को मरने नही दूगी।

जिनमती तप करने बैठ गई। उसके तप के प्रभाव से शासन देवी तुरन्त खिंची चली आई और उसने वध-स्थल पर ऐसा चमत्कार किया कि भीड की भीड राजा जितशत्रु के पास जाकर वोली—

"अन्नदाता ! नगररक्षक वसुदत्त मुंह की खा रहा है। रस्सी-पर-रस्सी टूट रही है। शूलियाँ कई टूट गई। जिनदत्त सच्चा है। सच्चे की रक्षा सव जगह होती है। अव आपके राज्य मे कोई ऐसो शूली नही, जो जिनदत्त के प्राण ले सके। ऐसी रस्सी भी कोई नही है जो उसके हाथ-पैर वाँध सके।"

राजा जितशत्रु रानी को लेकर स्वय वधस्थल पर पहुँचा। उसने जिनदत्त से क्षमा माँगी और आदेश दिया कि अव वसुदत्त को शूली दो। पर जिनदत्त ने उसे वचा लिया और राजा से कहकर उसे मुक्त करा दिया।

वाद मे वडी धूमधाम से जिनदत्त और जिनमती का विवाह सम्पन्न हुआ। बहुत दिनो तक विवाहित जीवन भोगने के वाद जिनदत्त और जिनमती ने भाग-वती दीक्षा लेकर आत्म कल्याण किया।

यह प्रसग सुनाने के वाद मुनिवर मुनिपति ने श्रेष्ठी कुचिक से कहा—

"तो कुचिक ! ससारत्यागी साधु जिनदत्त जैसे परो-पकारी होते है। वे बुराई करने वाले के साथ भी भलाई करते है। जिनदत्त ने उसी वसुदत्त को मरने से वचाया जो पूरी तरह से उसी के प्राण लेने पर तुल गया था।"

कुचिक बोला—

"मुनिवर ! पर आप तो जिनदत्त जैसे परोपकारी नहीं है। आपका स्वभाव तो महाकृतघ्न उस निषाद जैसा है, जिसने अपनी प्राणरक्षिका बदरिया को ही मार दिया था।"

"ऐसा कैसे हुआ ?" मुनि मुनिपति ने कहा—"निपाद की कृतघ्नता का प्रसग जरा विस्तार से सुनाओ।"

श्रेष्ठी कुचिक निषाद कथा सुनाने लगा, जो बहुत लम्वी थी। □

हरिकान्ता नगरी के राजा थे हरिपाल। राजा हरिपाल बडे ही दयालु थे। साधु-सेवा, परोपकार, सदाशयता आदि सदगुण उनमे खूब थे। उनके इन्ही गुणो का विस्तार उनके प्रजापालन मे भी था, सो उनके सुशासन मे प्रजा बहुत सुखी थी। यो सुख-दुख तो अपने भाग्य से मिलता है, इस नाते धनी-निर्धन—दोनो तरह के लोग हरिकान्ता नगरी मे बसते थे, पर इस दृष्टि से सबका भाग्य सद्भाग्य था कि हरिपाल जैसे राजा के राज्य मे बसते थे।

राजा मे धन और सत्ता—दोनो का साथ होता है, इसीलिए राजा मे कोई-न-कोई व्यसन हो जाना स्वाभाविक है। राजा हरिपाल मे भी एक व्यसन था। पर वह व्यसन ऐसा था कि आम-के-आम और गुठलियो के दाम, अर्थात् व्यसन-का-व्यसन और धर्म-का-धर्म।

हरिपाल राजा को बन्दर पालने का शौक था। पर वे यह भी जानते थे कि किसी भी पशु-पक्षी को पालना पाप है। यह तथ्य वे जानते भी थे और मानते भी थे। तोते को पालो तो उसे पिंजडे मे बन्द करो। किसी की स्वतत्रता छीनकर आप भले ही उसे सोने के पिंजडे मे बन्द करें, फल-मेवा खिलाये, पर पाप तो रहेगा ही।

बन्दर को पाले तो उसके गले मे रस्सी डालकर बॉधे। यह भी पाप हुआ। बन्दर का एक नाम शाखामृग है। वह डाल-डाल पर उछल-कूद करके ही सुख का अनुभव करता है। इसीलिए राजा हरिपाल वन्दरो को पालते भी थे और तज्जन्य पाप से साफ बच गये थे।

हरिकान्ता नगरी के निकट ही उन्होने एक वन लगवाया था। यह वन मधुर फलो से पूरित, सरोवरो वाला और राज सरक्षित वन था। इसी मे उनके पाले हुए बन्दर रहते थे। इसे वन्दर-वन भी कहते थे, क्योकि राजा के पाले हुए वन्दरो की ही इसमे अधिकता थी। यद्यपि वन मे फलो की कमी नही थी। फिर भी राजा हरिपाल फलो के टोकरे भर-भरकर वन मे ले जाते थे और अपने हाथ से बॉटते थे। प्रेम का भाव पशु-पक्षी भी जानते हैं, सो ये वन्दर उनके पास आ-आकर उनके हाथ से फल लेते थे। कोई वन्दर उनके कधे चढ जाता, कोई सिर पर उछलता और कोई वच्चा उनके हाथ से लटक कर किच्-किच् करके अपना प्रेम प्रकट करता। कुछ वडे-वडे वन्दरो के तो उन्होने नाम भी रख लिये थे, सो नाम ले-लेकर उन्हे पुकारते थे और वे भी अपने पालक को खूव जानते-पहचानते थे।

वन्दर का एक पर्याय हरि भी है। सभवत इसी नाते राजा का नाम हरिपाल पडा हो। तो हरिपालक अथवा राजा हरिपाल ने वर्षा से वचने के लिए भी वन्दरो का एक विशेष प्रवन्ध वन मे ही कर दिया था। वह यह कि

कुछ लतामण्डप और लताकुज ऐसे वनवा दिये थे जहाँ वन्दर वर्षा के समय वैठते थे तो एक वूद भी पानी नही आता था। यह प्रवन्ध ऐसा सुन्दर था कि घर-का-घर और वन-का-वन। सक्षेप मे कहे तो यही कि ये वन्दर भी राजा हरिपाल की प्रजा की तरह ही सुख-शान्ति से रहते थे। किसी कुशासन वाले देश का व्यक्ति देखता तो एक वार यह अवश्य कहता कि हम तो इस वन के वानर ही होते तो अच्छा था।

यो तो वन्दर मात्र शाकाहारी जीव है। पर इस कपिवन मे एक ऐसी वँदरी रहती थी, जो भीतर-वाहर से सात्त्विक और मनुष्य जैसे विवेक वाली थी। वन्दर के चारो दोषो मे से इसमे एक भी नही था। वन्दर मे काम, क्रोध, लोभ और मोह अतिशय मात्रा मे—अपनी पराकाष्ठा पर होते हैं। उसका काम तो जग जाहिर है ही। वन्दर क्रोधी इतना होता है कि आप उसकी ओर तनिक देख ही ले तो विना वात घुडकी देगा। अव लोभ देखे। वडा वन्दर छोटे वन्दर के हाथ से छीन कर खा जाएगा। और तो और माँ कहलाने वाली वँदरिया अपने वच्चे के हाथ से छीनकर खा लेती है। मोह की पराकाष्ठा यह है कि वदरिया अपने मरे हुए वच्चे की ठठरी को लिये-लिये तव तक घूमती है, जव तक उसके दूसरा वच्चा नही हो जाता। लेकिन ये सव वाते इस वँदरिया मे नही थी।

एक दिन यह वँदरिया अकेली एकान्त मे एक पेड पर वैठी थी कि एक शिकारी निषाद हाँफता-सा पेड पर

चढा और बन्दरिया को देख घबराया कि यहाँ यह काटेगी। उसको भयभीत देखकर बन्दरिया ने मानव-वाणी मे कहा—

"डरो मत। यहाँ तुम्हे कोई भय नही है।"

"तुमने तो निर्भय कर दिया।" अपनी छुरी को अच्छी तरह कमर मे लगाते हुए निषाद ने कहा—"पर नीचे तो व्याघ्र बैठा है। वडी दूर से यह मेरे पीछे पडा है। अव नीचे जमकर बैठ गया है।"

"इसकी चिन्ता मत करो।" बँदरिया ने कहा—"यह कव तक बैठा रहेगा ? एक दिन या दो दिन। कभी तो जाएगा। मैं यही पेड पर तुम्हारा सव प्रवन्ध कर दूगी। दस दिन भी इसी पेड पर रहो तो तुम्हे कोई परेशानी नही होगी। खाने को मैं मीठे-मीठे फल ला दूगी पर यह तो वताओ कि यह व्याघ्र तुम्हारे पीछे क्यो पड गया।"

निषाद वोला—

"अब क्या वताऊँ ? खैर, तुम से क्या छिपाना ? मैं नित्य ही यहाँ शिकार करने आता हूँ। शूकर, हिरन जो भी मिल जाता है मारकर ले जाता हूँ। आज मैं पेड की जड मे बैठा झाडी मे टोह ले रहा था कि कोई खरगोश निकलेगा। पत्तो की खडखडाहट हुई तो यह व्याघ्र निकला। मैं सव निशानेवाजी भूल गया और प्राण बचाने मुट्ठी वाँधकर भागा। यह भी पीछे-पीछे भागा। जैसे-तैसे इस पेड पर चढा हूँ सो अव भी नीचे जमकर बैठा है।"

"यहाँ हमारे पालक राजा हरिपाल तो निहत्थे और कभी-कभी तो अकेले भी आते है।" बँदरी ने कहा--"पर उनसे कोई कुछ नही कहता। कई बार तो ऐसे व्याघ्र उनके पास होकर गुजरे है। तुम्हारे पास हिंसा का शस्त्र है, इसीलिए व्याघ्र पीछे पडा। अहिंसा का अमोघ शस्त्र अपनाओ तो ससार की कोई शक्ति तुम्हारा कुछ नही बिगाड सकती।"

बँदरिया के इस कथन का निपाद ने कोई उत्तर नही दिया और मन मे सोचा—'इसका ज्ञान इसी के लिए रहे। जो वकती है, वकती रहे।'

यह सोच निपाद एक चौडे तने पर लेट गया। उसका सिर बँदरिया की गोद मे था। बँदरिया उसके सिर के डीगर देखने लगी। इधर इसका सिर सहलाया जाने लगा और उधर जगल की आनन्दमयी हवा वह रही थी, सो निषाद को नीद आ गई। निषाद को सोया जान नीचे से व्याघ्र ने भी मानव-वाणी मे कहा—

"अरी ओ बँदरी! इस निपाद को नीचे गिरा दे। मैं कई दिन का भूखा हूँ। इसे खाकर पेट भरूँगा।"

"शरणागत को नीचे गिराना पाप है भाई!" बँदरी ने कहा—"यह तथ्य यदि मैं जानती न होती तो इसे गिरा देती और केवल पापिनी वनती। पर अव जानकर भी गिरा दूँगी तो ज्ञान-पापिनी कहलाऊँगी। ज्ञानपापी का उद्धार नही होता।"

"तू तो मूर्ख है।" व्याघ्र ने कहा—"हम दोनो तो

जगल के वासी है और मनुष्य हमारा सहज शत्रु होता है। यह जिन पेडो की छाया मे बैठता है, उन्ही पेडो को काटता है। शत्रु पर दया करना निरी मूर्खता है। मेरी वात मान। इसे गिरा दे। इसे खाकर मैं चला जाऊँगा। तू तो निश्चिन्त पेड पर रहेगी ही।"

बँदरिया ने कहा—

"तेरी वात मैं कदापि नही मान सकती। अपने जीते-जी मैं इसकी प्राणरक्षा करूँगी।"

व्याघ्र वोला—

"मान ले मेरी वात। अन्त में यह मनुष्य जाति का निषाद तेरे साथ ही धोखा करेगा। तव तू वहुत पछतायेगी। मैं तुझे एक ऐसा जीता-जागता दृष्टान्त सुनाता हूँ कि तेरी आँखे खुल जायेगी और तव तू मानेगी कि मनुष्य कितना कृतघ्न होता है। वह अपने उपकारी के साथ ही अपकार करता है।"

यह कह व्याघ्र बँदरिया को एक दृष्टान्त सुनाने लगा।

□ □ □

किसी गाँव मे शिव नाम का एक ब्राह्मण रहता था। ब्राह्मण वेदज्ञ, सस्कृतनिष्ठ और विद्वान भी था। एक वार उसके मन मे इच्छा हुई कि तीर्थयात्रा को जाऊँ। ऐसा शुभ निश्चय कर उसने गाँव 'वालो को प्रणाम किया और कहा—

"पुण्य शेष रहे तो लौटकर फिर मिलूँगा। पैदल तीर्थयात्रा मे वर्षों लगाते है। कोई भाग्यशाली ही लौट पाता है।"

एक चादर और लोटा साथ लेकर ब्राह्मण चल दिया। पैदल चलने वाला ज्यादा सामान लेकर कैसे चले। हाँ, खाने का ऐसा सामान अवश्य ले लिया था, जो कुछ दिन चल जाए। ऐसे ही तीर्थयात्रियो, पथिको आदि की सुविधा के लिए दानवीरो ने रास्तो मे जगह-जगह कुएँ, धर्मशालाएँ आदि वनवा दिये थे। शिव कुएँ से पानी खीचकर पीता और आगे चल देता। कई महीने उसके पार हो गये।

इसी यात्रा क्रम में ग्रीष्म ऋतु आ गई। शिव ने एक तीर्थ नगर पार किया। वहाँ से कुछ आटा-दाल ले लिया था। चलता रहा। गाँव-नगरो का मार्ग छटा तो वन-मार्ग आ गया। वन मे उसने पहला पडाव सरोवर के निकट डाला। जगल से सूखी लकडी ले ली। वनगायो के गोवर के अन्ने कण्डे भी पडे मिल गए। आग जलाई, लोटे मे दाल पकाई। अगोछे मे आटा गूँधा और अगारो पर विना तवे की ही रोटियाँ सेक कर खाई। कुछ देर विश्राम करके शिव पुन चल दिया, क्योकि अभी दिन एक-डेढ प्रहर वाकी था।

दूसरे दिन सवेरे से दोपहर तक चला तो कही कोई जलाशय या सरोवर नही मिला। मार्ग भी ऊवड-खावड़ था। ऐसा लगता था कि शिव मार्ग भटक गया हो। प्यास के मारे उसके प्राण निकले जा रहे थे। पर वह भाग्य का धनी था सो जगल मे वना एक कुआँ मिल गया। कुआँ देखते ही उसकी जान मे जान आ गई।

पास मे लोटा तो है, पर रस्सी नही है। अब क्या हो ? शिव ने सोचा कि अगोछा और धोती जोडकर भी तो काम नही चलेगा। झाँककर देखा तो कुएँ की दीवारो मे पड़े उगे थे। पत्तो ने पानी के तल को ढक दिया था। पेडो के नीचे भी पेड थे। उसे पानी पीना ही था, सो एक युक्ति दिमाग मे आ गई।

पास ही बेत के पेड खडे थे। उसने बेत की पतली-पतली टहनियाँ तोडी और परिश्रम करके एक लम्बी-सी मजबूत रस्सी बना ली। रस्सी का एक छोर कुएँ के ऊपर झुके पेड से बाँधा और उसको खीचकर उसकी ऐंठन को सीधा करके सोचा कि इस रस्सी को यो ही बँधा छोड जाऊँगा। मुझ-जैसा कोई भूला-भटका यात्री आ गया तो उसे रस्सी नही बनानी पडेगी। यह सोच शिव ने रस्सी के दूसरे छोर मे लोटा बाँधा और कुएँ मे फाँस दिया। पर जब लोटा खीचा तो भारी था। उसने खीचा तो लोटे के साथ ही एक बन्दर बाहर आया।

इस बन्दर को जातिस्मरणज्ञान था, सो उसे पूर्व-जन्म का स्मरण था। अत उसने धरती पर रेत मे लिखा कि इस कुएँ मे एक व्याघ्र और एक सर्प भी है उन दोनो को भी निकाल लो। शिव ने उन्हे भी निकाला। तीनो बाहर आये और शिव का बडा भारी उपकार माना। शिव ने पानी पीकर शान्ति प्राप्त की और तीनो के पास बैठ गया।

पूर्वजन्म के मनुष्य जातिस्मरणज्ञान वाले बन्दर ने पुन. धरती पर लिखा—

"हम तीनो प्राणी—मै वन्दर, यह सर्प और व्याघ्र मथुरा के परिपार्श्व मे रहते है। आपने हम पर वडी कृपा की। कभी हमारी ओर आये तो आपके पुन दर्शन कर हम धन्य हो जाएँगे। क्योकि उपकारी का दर्शन देव-दर्शन जैसा ही शुभ और मगलमय होता है।

"आप विप्र है। आपके मस्तक पर लगे तिलक से मैंने जान लिया कि आप विप्र है। सो हे विप्र! चलते-चलते मैं आपको एक सलाह दूगा। वह यह कि इस कुएँ मे मथुरा का ही एक सुनार भी पडा है। उसे मत निकालना। क्योकि वह दुरात्मा और कृतघ्न है। उसे कुएँ मे ही रहने देना।"

विप्र शिव ने यह सव पढा। वन्दर, सर्प और व्याघ्र उसे प्रणाम कर अपने गन्तव्य की ओर चले गए। शिव कुएँ के पास वैठा-वैठा विचार करता रहा कि वन्दर की वात मानू या न मानू। पहले सोचा, 'यह वन्दर साधारण वन्दर नही है। शरीर ही तो वन्दर का है, पर मनुष्य की तरह पढा-लिखा है। विवेक वाले की वात माननी चाहिए।' फिर दूसरे ही क्षण विचार पलटा—'मनुष्य को मनुष्य के काम आना ही चाहिए। मै कैसा मनुष्य रहा कि पशुओ को तो निकाल दिया और मनुष्य को कुएँ मे ही पडा रहने दू? सुनार से मुझे क्या लेना-देना, जो उसकी कृतघ्नता से डरूँ। मेरा मार्ग अलग है उसका अलग। उसे निकालना ही चाहिए।'

यह सोच शिव ने पुन रस्सी कुएँ मे लटकाई और सुनार को कुएँ से निकाल दिया। कुएँ मे पडा-पडा

सुनार पीला-सा पड गया था। उसका चेहरा मुरझाया था। कुछ देर तो वह बोल नही पाया। फिर बोला—

"धन्य हो तुम, जो देवरूप बनकर आये। हम चार प्राणी इस कुएँ मे पड़े थे। बारी-बारी से गिर गये। सकट मे भी कैसी एकता होती है कि शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। मुझे यदि साँप काट लेता तो मरता और व्याघ्र खा जाता तो भी यमलोक पहुँचता। ये दोनो ही मनुष्य के शत्रु है। पर इन्हे आशा थी कि कोई निकालेगा तो मनुष्य ही निकालेगा। सो मित्रवत् रहे। समान परिस्थिति का सकट इसी तरह शत्रु को मित्र बना देता है। बाढ के समय मैंने एक टीले पर सिंह हिरन, सर्प और मयूर को एक साथ बैठे देखा था।

"खैर, अब तो बच गया। मेरा नाम सुगोधा है। मथुरा कभी आप आयें तो सुगोधा सुनार का घर किसी से पूछ लेना। राजघराने के जेवर मैं ही गढता हूँ। वहाँ राजा श्रीकान्त का राज्य है। कभी आना भाई! अब मैं चलूगा। बाल-बच्चो से बिछड़े बहुत दिन हो गए।"

शिव को प्रणामकर सुनार भी अपने नगर मथुरा की ओर चला गया। कुएँ के पास बैठा-बैठा शिव अब सुनार के बारे मे सोच रहा था—'बन्दर ने इसके बारे मे जो लिखा, ठीक नही लिखा। यह तो भला आदमी है। अपने यात्रा-क्रम मे मैं मथुरा अवश्य जाऊँगा।'

सोच-विचारकर शिव उठा। एक लोटा पानी खीचकर और पीया और फिर आगे चल दिया। तीर्थों

की यात्रा करते हुए एक बार वह मथुरा की ओर ही पहुँच गया। किसी से पूछा कि भाई मथुरा यहाँ से कितनी दूर है तो उसने बताया—

"इस वन से जाओगे तो जल्दी पहुँचोगे। वन को पार करते ही मथुरा आयेगा। छह कोस का वन-मार्ग है। कोसभर जमुना के कछार पड़ेंगे। फिर मथरा नगरी के भवन दीखने लगेंगे।"

शिव वन में पैठा तो आधा वन पार करने के बाद उसे वही बन्दर मिल गया, जिसे उसने कुएँ से निकाला था। दोनों ने एक दूसरे को पहचान लिया। बन्दर ने शिव की बड़ी आवभगत की। उसे मीठे-मीठे फल खाने को दिये। लेटने के लिए नीचे पत्ते बिछा दिये और जब शिव ने जाना चाहा तो बन्दर ने अपने साथी व्याघ्र की गुफा भी बता दी, जहाँ वह रहता था।

शिव व्याघ्र से भी मिलना चाहता था, सो वह उसकी गुफा के पास पहुँच गया। दूर से ही व्याघ्र ने उसे देखा तो दौड़कर उसके पास आया और अपनी पीठ पर बिठा कर शिव को गुफा तक ले गया। अब व्याघ्र सोचने लगा—'इस ब्राह्मण ने कुएँ से निकालकर मेरा उद्धार किया था। तो अब मेरा भी फर्ज है कि अपने अतिथि की कुछ विशेष सेवा करूँ।'

यह सोच व्याघ्र शिव को गुफा-पर छोड़ जंगल में चला गया और एक पेड़ के नीचे बैठ विचार करने लगा कि क्या लाऊँ? तभी एक तीर सनसनाता हुआ आया, जो व्याघ्र के न लग पेड़ के तने में लगा। व्याघ्र ने खड़े

होकर देखा कि मथुरा के राजा श्रीकान्त का पुत्र राजकुमार अमितबल घोडे पर चढा दूसरा तीर धनुष पर चढा रहा है। व्याघ्र को क्रोध आया सो वह उसी ओर झपटा। उसे देख घोड़े को अपने प्राण बचाने की सूझी सो वह राजकुमार को पटक नगरी की ओर भाग छूटा। धरती पर गिरा राजपुत्र पुन उठा और तलवार लेकर व्याघ्र की ओर दौडा। पर व्याघ्र ने उसे बचाव का अवसर न दे दबोच दिया और गर्दन पर मुँह गडा-कर खून पी लिया। फिर उसे अपने पहले कर्तव्य का ध्यान आया तो बडा खुश हुआ—'अब इसी के आभूषण अपने अतिथि को दूँगा।'

व्याघ्र ने मुँह और पजे के बल से राजकुमार अमित-बल के समस्त आभूषण उतारे और उन्हे ले जाकर शिव को दे दिये। रत्नजटित आभूषण पाकर शिव बहुत प्रसन्न हुआ।

व्याघ्र से मिलने के बाद विप्र शिव ने सोचा कि अब आया ही हूँ तो सुगोधा सुनार से भी मिल लूँ। उसने भी तो कहा था कि कभी मथुरा आना तो मिलना, साथ ही सर्प से भी मिलूँगा। इस मिलने मे यह भी पता चल जाएगा कि बन्दर की बात कितनी सही है। बन्दर ने उसे कृतघ्न बताया था, जब कि मुझे तो वह भला ही लगा था। अत अब शिव सुनार और सर्प से मिलने चल दिया।

इधर घोडे को सूना लौटते देख जगल में बिखरे राजकुमार के अगरक्षको को चिन्ता हुई। उन्होने राज-

कुमार की खोज की तो उसके शव को पा लिया । वात तो फैलनी ही थी । राजा श्रीकान्त के शोक का पार नही रहा । उसकी रानी मोहनी पछाडे खाकर रो रही थी । राजकुमार की वहन रोहिणी भैया-भैया कहकर आंसू वहाती थी ।

जव राजकुमार की अन्त्येष्टि हो गई और शोक कुछ स्थिर हुआ तो राजा श्रीकान्त ने कहा—

"मेरे पुत्र को शिकार का जो व्यसन था, वह वहुत वुरा था, यह मैं मानता हूँ । वह जीवो का वध करता था, यदि कोई हिंसक जीव उसका वध कर देता तो मुझे ज्यादा दु ख नही होता । क्योकि वुरे का अन्त वुरा ही होता है । पर उसे तो किसी मनुष्य ने ही मारा था । क्योकि जानवर आभूषण क्यो लेता ? किसी मनुष्य ने ही लोभवश मेरे पुत्र को मारकर उसके आभूषण उतार लिये है । अत तुम सव नगरवासी तथा राज्याधिकारी उस हत्यारे की खोज अवश्य करना । मैं मुँहमाँगा पुरस्कार दूँगा ।"

राजकुमार के मरने के वारे मे तरह-तरह की वाते होती थी । कोई कहता था कि उसकी देह पर किसी जानवर के पजो के निशान थे तो मनुष्य ने कैसे मारा ? कोई कहता कि जव एक भी आभूषण नही छोडा तो किसी पशु ने कैसे मारा ? खैर, जितने मुँह उतनी वातें ।

अव पूछते-पूछते विप्र शिव सुगोधा नामक सुनार के घर पहुच गया । उसने सुनार को पहचान लिया और

उसके पास जाकर खडा हो गया। पर सुनार ने उसकी ओर देखा तक नही और नीचे मुँह किये अपनी खुट-खुट मे लगा रहा। तब शिव ने ही अपनी ओर से कहा—

"क्या नही पहचाना ? सालभर मे ही भूल गये ?"

"साल भर मे ?" सुनार ने ऊपर मुँह करके कहा—"साल भर पहले तुम कब मिले थे ? कुछ याद दिलाओ। लगता है, कही देखा तो है।"

शिव बोला—

"जगल के कुएँ मे तुम पडे थे। मैंने बन्दर, व्याघ्र, सर्प और तुम्हे—चारो को कुएँ से निकाला था। अब तो याद आया।"

"हाँ, हाँ, तो उसका बदला लेने आये हो ?" सुनार ने सिर खुजलाकर कहा—"बोलो, क्या चाहते हो ?"

"राम-राम, राम ! बदला कैसा ?" शिव ने कहा—"मैं तो यो ही मिलने चला आया था।"

यह कह शिव स्वय ही धरती पर बैठ गया और फिर बोला—

"बन्दर से मिल लिया। व्याघ्र से मिल लिया। अब तुमसे मिलने के बाद सर्प से भी मिलूँगा। हाँ, यदि तुम कर सको तो मेरा काम कर दो। मेरे पास मे कुछ आभूषण हैं। इन्हे तुम या तो स्वय खरीद लो या अपनी नगरी मे कही बिकवा दो। मै इन्हे लिये-लिये कहाँ फिरूँगा ? तुम्हारे सहयोग से ठीक मूल्य भी मिल जाएगा।"

आभूपणो नाम सुनते ही सुनार के मुँह मे पानी भर आया। उसने जब आभूषण देखे तो उसकी आँखो मे चमक आ गई। कठे पर अमितबल नाम पडा था। उसे पढकर सुनार समझ गया कि ये सब आभूषण राजकुमार अमितवल के ही हैं। अव मेरी पाँचो घी मे है। राजा से मुँहमाँगा पुरस्कार मिलेगा। राजा क्या वचन पलटेगा ? मैं यदि कहूँ कि राजन् तुम अपनी पुत्री का विवाह मेरे साथ कर दो तो करेगा ही। हॉ, इसे प्राण-दण्ड अवश्य मिलेगा। मिले प्राणदण्ड। मेरा क्या वाप लगता है ? एक वार कुएँ से निकाल दिया तो क्या अह-सान किया। कुएँ से निकलने के वाद मैने इसे कुएँ मे नही धकेला, मैंने यही क्या कम किया ?

दुष्ट, खल, दुर्जन, दुरात्मा, पापी, कृतघ्न—कुछ भी कह लो। इनका चिन्तन ऐसा ही विपरीत हुआ करता है। यह मुनार भी दुष्ट, खल, दुर्जन और कृतघ्न ही था, सो उसका उक्त चिन्तन भी स्वाभाविक था। आभूषणो को देख उसने जो अपना स्वप्न ससार वनाया था, उसके कारणउसने अव शिव से मीठी-मीठी वाते की। उसने कहा—

"विप्रवर ! ये आभूषण तुम्हे कहाँ मिले थे ?"

विप्र शिव ने जो वात थी, वह वता दी कि मुझे तो कही से लाकर व्याघ्र मित्र ने दिये थे। अव सुनार ने कहा—

"तो आते ही तुमने इनके वेचने की वाते कर दी। वाकई, मैं तो सालभर पहले की घटना भूल गया था। पर अब सव याद आ गया। तुमने तो मुझे दूसरा जन्म दिया था। तुम यहाँ आये, मुझ पर कृपा ही की है।

दोपहर तक भोजन वना जा रहा है। जव तक तुम यमुना जी मे स्नान कर आओ। मथुरा आये हो तो यमुना मे स्नान नही करोगे ?"

"मैं तो निकला ही तीर्थ करने हूँ। यमुना मे स्नान तो करूँगा ही।" शिव ने कहा—"लेकिन यमुनास्नान के वारे मे मेरे विचार अन्य ब्राह्मणो से भिन्न है। अन्य ब्राह्मण क्रिया—स्नान करने पर वल देते है और कहते है—यमुना के नहाये ते पास आवै यमु ना। अर्थात् यमुना-स्नान करने से यम पास नही आता। यह सब नासमझी की वाते हैं। शरीर शुद्धि तो प्रत्येक जल से होती है। यमुना प्रेम का प्रतीक है। सवसे प्रेम करो, यही सच्चा यमुना-स्नान है। इसी तरह गगा ज्ञान अथवा विवेक की प्रतीक है। विवेक होने पर ही कर्म-अकर्म जाना जा सकता है। विवेक न होने पर गगा-स्नान और सवके लिए प्रेम न होने पर यमुना-स्नान—सव व्यर्थ है।"

"आप तो ज्ञानी पडित है।" सुनार ने कहा—"मैं तव तक वाजार से आपके लिए मिष्टान्न आदि खरीद लाऊँ और आप यमुना नदी पर स्नान कर आइए। फिर आभूषण लेकर इन्हे वेचने चलेगे।"

भोला-भाला शिव ब्राह्मण यमुना-स्नान करने चला गया। सुनार आभूपण लेकर सीधा राजा श्रीकान्त के पास पहुँचा और वोला—

"राजन्! राजकुमार अमितवल के हत्यारे का पता चल गया। उसकी मौत ही उसे मेरे पास ले आई है।"

यह कह सुनार ने राजकुमार के समस्त आभूषण राजा के सामने रख दिये। राजा आभूषणो को कभी छाती से लगाता और कभी आँखो से लगाता। उसकी आँखो से झर-झर आँसू गिरने लगे। थोडी ही देर वाद उसका पुत्रशोक क्रोध मे वदल गया और सुनार से कहा—

"उस हत्यारे को जल्दी ही मेरे हवाले करो। उसे यमलोक पहुँचाने के वाद ही मुझे शान्ति मिलेगी।"

सुनार ने पूरी योजना समझाने के वाद कहा कि मैं उसे लेकर अमुक दुकान पर आभूषण विकवाने जाऊँगा। आप वहाँ अपने सैनिक भेज दीजिए।

राजा को समझाने के वाद विश्वासघाती सुनार आभूपण लेकर घर आया। थोडी ही देर वाद शिव भी यमुना-स्नान करके आ गया। सुनार ने उसे न तो खाना खिलाया और न अच्छी तरह वैठने ही दिया। आते ही उसने कहा—

"विप्रवर! भोजन लौटकर करेंगे, पहले तुम्हारे आभूपण विकवा दू। लो ये सम्हालो।"

आभूपणो की पोट शिव के हाथ मे थी। शिव को साथ लेकर सुनार पूर्व नियोजित दुकान पर पहुँच गया। तभी राजा के सैनिक आ धमके। शिव को पकड लिया गया। सुनार की कृतघ्नता शिव की समझ मे अच्छी तरह से आ गई और उसने समझ लिया कि वन्दर ने ठीक ही कहा था, कि इस पापात्मा को कुएँ मे ही पडा रहने दो।

राजा श्रीकान्त क्रोध मे विवेकशून्य हो गया था। उसने शिव से कुछ भी स्पष्टीकरण नही माँगा और उसे वधिको के हवाले कर शूली का हुक्म दे दिया। प्रथा के अनुसार वधिको ने शिव के शरीर पर लाल चन्दन लपेटा। उसके गले मे लाल कनेर की माला डाली और सिर पर लाल कपडा बाँध जगल मे वधस्थल की ओर ले चले।

जगल मे सर्पों की बॉवियॉ भी थी। शिव ने बाँवियाँ देखी तो याद आया, यहाँ आकर मुझे उस सर्प से भी मिलना था, जिसे मैंने कुएँ से निकाला था। तीन का व्यवहार तो देख लिया, सर्प का रह गया। पर अब तो मर ही जाना है।

चलते-चलते शिव ने मन-ही मन एक श्लोक की रचना कर डाली और जोर-जोर से वह श्लोक पढा—

व्याघ्र-वानर-सर्पाणा यन्मया न कृत वच.।
तेनाहृ दुर्विनीतेन् कलावेन् विनाशित ॥

अर्थात् व्याघ्र, बन्दर और सर्प का कहना मैंने नही माना। परिणामस्वरूप दुर्विनीत सुनार द्वारा मैं मृत्यु को प्राप्त करने जा रहा हूँ।

वाँवी मे रह रहे सर्प ने भी यह श्लोक सुना तो तुरन्त वाँवी से वाहर निकलकर आया। उसने शिव को देखते ही पहचान लिया और सोचा, 'सुनार ने अपनी नीचता का परिचय देकर भलाई का वदला बुराई से दिया है। ज्यादा देर न कर मुझे अव अपना पूरा फर्ज करना चाहिए।'

यह सोच सर्प तीव्रगति से दौडा और राजमहलो मे पहुँच राजकुमारी रोहिणी को डस लिया । अव तो लेने के देने पड गये। रनिवास मे हाहाकर मच गया। राजा विलख-विलखकर रोने लगा—वेटे को मरे तीन ही दिन हुए है और यह वेटी भी चल वसी ।

तुरन्त मत्रविद् गारुडी वुलाये गये । सवने प्रयास किये, पर अनुकूल परिणाम नही निकला। तव एक वृद्ध और अनुभवी गारुडी ने राजा से कहा—

"राजन् ! मेरी माने तो एक वात कहूँ । वह यह कि आप शिव ब्राह्मण को छोड दीजिए। वह मुझे निर्दोष लगता है। आपने उस निर्दोष को प्राणदण्ड दिया है, इसीलिए सर्प ने राजकुमारी को डसा है।"

"यह तुम किस अधार पर कहते हो ?" राजा ने कहा--"अटकलो की वातो का प्रमाण क्या होता है ?"

मत्रविद् वोला—

"मेरा जीवन साँपो मे वीता है । मैं साँपो की यह प्रकृति जानता हूँ कि वह कव-कव काटता है। शिव ने जो श्लोक पढा था, उसमे सर्प का भी उल्लेख था। खैर, मैं अव आपको प्रमाण भी देता हूँ ।"

यह कह गारुड़ी मत्र पढने लगा । मत्र-प्रभाव से काटने वाला सर्प उसके शरीर मे उतरा और कहने लगा—

"राजकुमार अपनी मौत मरा है। तैरने वाला डूवकर मरता है। साँपो के खिलाडी को साँप काट लेता है।

इसी तरह आखेटक को भी हिंसक पशु मार देता है। राजकुमार को व्याघ्र ने मारा था। व्याघ्र ने ही शिव को आभूषण दिये थे। उसे अकारण दण्ड मिला है। वह शिव ब्राह्मण ही पूरी कहानी सुनायेगा।"

अव तो राजा श्रीकान्त को पूरा विश्वास हो गया। उसने शिव की शूली रोकने को चर दौडाये। शिव वच गया। जब वह लौटकर आया तो उसने राजा को वन्दर, व्याघ्र, सर्प और सुनार को जगल मे कुएँ से निकालने से लेकर यहाँ तक के समाचार सुना दिये। अव राजा का क्रोध सुनार पर पडा और उसे ही प्राणदण्ड दिया। पर शिव ने उसे वचा लिया।

"ऐसे कृतघ्न को मैं अव अपनी पवित्र मथुरा नगरी मे नही रहने दूँगा।" यह कह राजा श्रीकान्त ने दुरात्मा सुनार को अपने नगर और राज्य से निकालने के आदेश दे दिये। इधर सर्प ने राजकुमारी का विष खीच लिया था। वह निर्विष होकर अच्छी हो गई। राजा ने वृद्ध गारुडी को पर्याप्त पुरस्कार दिया और शिव को तो सखा की तरह अपना मत्री ही वना लिया।

इतनी कहानी सुनाने के वाद व्याघ्र ने नीचे से ही कहा—

"अरी बँदरी! सुनार की कृतघ्नता सुनकर तू यह जान ले कि मनुष्य कितना कृतघ्न होता है। अत तू इस निषाद को नीचे फक क्यो नही देती?"

धर्मशील बँदरी ने कहा—

"रे व्याघ्र! तेरी पूरी कहानी मे शिव ब्राह्मण भी

तो मनुष्य ही था। वह कितना भला था कि अपने साथ बुराई करने वाले सुनार के साथ दूसरी वार भी भलाई की। सभी मनुष्य एक-से नही होते।"

"पर यह निषाद तो सुनार जैसा ही है।" व्याघ्र ने कहा—"यह मासजीवी और पापी है। मास हम पशुओ का भोजन है या इसका ? मनुष्य होकर भी यह मास खाता है। तू देख लेना, यह तुझे भी धोखा देगा।"

"यह तो अपना-अपना स्वभाव है।" बँदरी ने कहा—"इसका स्वभाव यदि धोखा देना है तो मेरा स्वभाव धोखा न देना है।"

व्याघ्र को निश्चय हो गया कि यह बँदरी मेरी बातो मे नही आयेगी। इसे लम्वी-चौडी कहानी भी सुना दी। दुनियाभर की दलीले भी दी, पर यह अपने धर्म पर ही अडी है। अत व्याघ्र झक मारकर बैठ गया। अब निषाद की नीद पूरी हुई तो वह एक अँगडाई लेकर उठा और बँदरी से बोला—

"अभी गया नही व्याघ्र ?"

"अभी तो बैठा है।" बँदरी बोली—"पर तुम चिन्ता क्यो करते हो ? मैंने जो पहले कहा, वही अब कहती हूँ। तुम्हारे अनिश्चित दिन इस पेड पर ही गुजार दूँगी।"

"अब तो तुम्हारी ही शरण हूँ।" निषाद ने कहा—"पर अब तुम भी सो जाओ। अब मैं जागता रहूँगा। काफी सो लिया हूँ।"

निषाद की जाँघ पर सिर रखकर बँदरिया सो गई। अब नीचे बैठे व्याघ्र ने निषाद से कहा—

"रे निषाद ! तू इस बँदरी को नीचे फेंक दे। इसे खाकर मैं चला जाऊँगा और तू फिर निश्चिन्त होकर अपने घर जाना। मैं सात दिन का भूखा हूँ। इतना तू निश्चित जान ले कि अपना पेट भरे बिना मैं यहाँ से जाने का नही। तू भला कब तक इस पेड पर बैठा रहेगा ? अत तेरा हित इसी मे है कि इसे नीचे गिराकर अपने प्राण बचा ले। क्योकि इसे खाने के बाद तो मैं यहाँ से तुरन्त चला जाऊँगा और तेरा मार्ग निरापद हो जाएगा।"

निषाद ने एक दृष्टि अपनी जघा पर सिर रखे सोती हुई बँदरी पर डाली और किंचित् असमजस मे पडा। तब उसको उत्साहित करने के लिए व्याघ्र ने पुन. कहा—

"तेरे मन की मैं जानता हूँ। तू सोचता होगा कि यह मेरी मित्र है तो इसे मैं नीचे कैसे फेंक दूँ। यही न ? पर निषाद ! याद रख बदर मनुष्य का मित्र कभी नही हो सकता। इसकी दोस्ती जी का जजाल होती है। वन्दर जैसा मूर्ख दोस्त दूसरा नही होता। यह तो अपने पालक के भी प्राण ले लेता है। मैं तुझे एक वन्दर की कहानी सुनाता हूँ, जिसने अपने परम हितैषी स्वामी को मार डाला था। तो तू पहले मेरी कहानी सुन और फिर इसे नीचे गिरा दे।

"निषाद ! नागपुर नामक नगर मे पावक नाम का राजा राज्य करता था। एक बार राजा पावक आठ

अगरक्षको के साथ भ्रमण को गया। पर उसका घोडा नया और वक्रशिक्षित था, सो वह राजा जगल मे अकेला भटक गया। उसके सभी अगरक्षक पीछे रह गये। जिस जगल मे वह अकेला भटक रहा था, वहॉ उसे पानी भी नही मिला। प्यास के कारण राजा पावक के प्राण कठ मे अटके थे।

"उसी जगल मे एक चतुर वन्दर भी था। उसने राजा को लेटा देखा तो उसके लिए फल तोड़ लाया और वे फल राजा के पास रख वही वैठ गया। फलो को देख राजा की जान मे जान आई। रसदार फल खाकर राजा की भूख भी मिटी और प्यास भी मिट गई। फिर भी पानी के विना प्यास नही मिटती। राजा ने वडे प्रेम से वन्दर के सिर पर हाथ फेरा और उससे कहा—वन्दर! तू वडा समझदार है। तू तो यहाँ जगल मे रहता है तो यह भी जानता होगा कि यहॉ सरोवर कहाँ है। तू मुझे पानी के पास ले चल। प्यास अभी नही मिटी।

"तो निषाद! वह वन्दर पावक राजा को सरोवर के पास ले गया। राजा ने पानी भी पिया और नहाकर थकान भी मिटाई। इसके वाद राजा को उसके अगरक्षक भी उसे ढूँढते मिल गये। राजा ने अपने अगरक्षको से कहा—मेरा असली अगरक्षक तो यह वन्दर है। इसे मैं अपने साथ ले जाऊँगा और इसी को अपना हर समय का अगरक्षक वनाऊँगा।

"रे निषाद! पावक राजा वन्दर को अपने नगर

नागपुर मे ले आया। अपनी भवनवाटिका मे उसे खुला छोड दिया और उसे स्वर्ण आभूषण भी पहनाये। अव वह वन्दर राजा का अगरक्षक नियुक्त हो गया। दिन या रात—जब भी राजा लेटता या सोता, वन्दर उसके सिरहाने बैठ रहता।

"तो एक दिन भवनवाटिका मे राजा पावक लेटा था। वन्दर उसके सिरहाने वैठा था। वाटिका की शीतल समीर लगी तो राजा को नीद आ गई। तभी एक भौरा गुनगुन करता हुआ आया और राजा के ऊपर मँडराने लगा। वन्दर ने झपट्टा मारकर उसे भगा दिया। लेकिन ढीठ भौरा फिर आ गया। दो-चार वार तो वन्दर ने उसे उडाया, फिर तो उसे ऐसा क्रोध आया कि राजा की तलवार उठा ली और भौरे पर वार किय।। भौंरा तो उड गया पर वह तलवार राजा की गर्दन पर लगी और गहरा घाव कर गई।

"निषाद ! वन्दर की नादानी से राजा मर गया। तू भी इस दृष्टान्त से यह शिक्षा ले कि वन्दर कभी वफा-दार नही होता। वह मित्र होकर भी शत्रु रहता है। जिस वँदरिया को तू अपना मित्र समझ रहा है, अन्त मे यह भी तुझे धोखा देगी और तेरी मौत का कारण वनेगी। अत अपनी ही भलाई के लिए तू इसे नीचे धकेल दे। इसे खाकर मैं अपना रास्ता लूंगा और तू अपने घर जाना।"

इतना सुनते ही मदान्ध और पापी निषाद का

स्वार्थ जाग गया। उसने परोपकारिणी सोती हुई वन्दरी को पेड से नीचे धकेल दिया और व्याघ्र ने उसे अपने मुँह मे भर लिया। पर धर्मनिष्ठ प्राणी तो सदा निर्भय होते है। उन्हे देहासक्ति परेशान नही करती। वे मौत से भी नही डरते। बँदरी भी किंचित् भयभीत नही हुई। उसने व्याघ्र से कहा—

"रे व्याघ्र! मेरी अधम देह तुम्हारे काम आये, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। मुझे खाकर अपना पेट भरो। पर एक बात जान लो कि वन्दर के प्राण सदा पूछ मे रहते है। यदि तुम मुझे पूँछ से खाना शुरू करो तो मुझे भी कम कष्ट होगा और तुम्हे भी अधिक स्वाद आयेगा।"

बँदरी की यह बात सुन व्याघ्र ने मुँह खोलकर उसे पूँछ से पकडना चाहा। पर पहले से सावधान बँदरी व्याघ्र का मुँह खुलते ही उछली और उछलकर पेड पर जा बैठी। व्याघ्र देखता ही रह गया। 'यहाँ मेरी दाल नही गलेगी, कही और शिकार खोजूँगा', यह सोच व्याघ्र वहाँ से चला गया।

बँदरी पेड पर आई। उसे देख निषाद कुछ झेपा। पर बँदरी ने उससे कुछ नही कहा। बुराई के बदले भी जो भलाई करते हैं, बँदरी जैसे प्राणी दुर्लभ ही हैं। अत, बँदरी ने अपने अपकारी का पुन हित ही सोचा और अपकारी निषाद से कहा—

"अब तो व्याघ्र चला गया है। चलो मेरे साथ घर चलो। वहाँ तुम पूर्ण सुरक्षित रहोगे।"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?" निषाद ने कहा—"मै तो इन पेडो को ही तुम्हारा घर समझता हूँ ।"

बँदरी बोली—

"हम वन्दर शाखामृग कहलाते है । अत पेड तो हमारे घर है ही । पर इस हरिकान्ता नगरी के राजा हरिपाल ने हम वन्दरो के लिए वन मे ही ऐसे लताकुज बनवाये है जो धूप-पानी मे हमारा घर होते हैं । ऐसे ही एक लताकुज मे मैं अपने छोटे-छोटे बच्चो के साथ रहती हूँ । मेरे बच्चे मेरी राह देख रहे होगे । चलो, नीचे उतरो ।"

बँदरी निपाद को लेकर लताकुज मे पहुँची । वहाँ उसके बच्चे किलकारियाँ मार रहे थे । माँ को देख वे उससे लिपट गये । माँ ने उन्हे प्यार किया और फिर निषाद से बोली—

"तुम इनके साथ खेलो । मैं तव तक तुम्हारे लिए फल ले आऊँ ।"

बँदरी जगल मे फल लेने चली गई । इधर निषाद ने सोचा, 'वन्दर का मास बडा स्वादिष्ट होता होगा । क्योकि इसकी आकृति मानव जैसी होती है । मानव का मास तो दुर्लभ है । क्यो न मैं इन बच्चो को ही मारकर खा लूँ ?'

निषाद बँदरिया के दुधमुँहे बच्चो को मारकर खा गया । तृप्त होकर लेट गया । कैसा नीच था, वह निषाद । बँदरिया फल लेकर आई । अपने बच्चो को न पाकर वह दुखी हुई । पर करती क्या बेचारी ? उसे देख

निषाद ने पुन सोचा, 'दिनभर भटकने के वाद खाली हाथ लौटना पडेगा । आज मेरे वच्चे भी बँदरी का मास खायेंगे । क्यो न इस बँदरी को ही मारकर ले चलूँ ?'

उस पापी निषाद ने परोपकारिणी बँदरी को एक लाठी से ही ढेर कर दिया और उसे कधे पर डाल घर की ओर चल दिया । रास्ते मे उसे वही व्याघ्र मिल गया । व्याघ्र को देख निषाद घवराया तो व्याघ्र ने उससे कहा—

'डरता क्यो है ? मैं तुझ पापी को अव नही खाऊँगा । तेरे जैसे कृतघ्न का उदाहरण और कहाँ मिलेगा ? जिस बँदरी ने वार-वार तेरी प्राणरक्षा की, उसे ही तू मय उसके वच्चो के खा गया ।

"रे नीच ! तेरा खाना तो दूर, तेरे देखने से ही मुझे पाप लगेगा ।"

यो निषाद को वार-वार धिक्कार कर व्याघ्र अपने रास्ते चला गया । निपाद तो चिकना घडा था । व्याघ्र की धिक्कार का उस पर कोई असर नही हुआ और वह मरी हुई वँदरी को लेकर घर पहुँचा । पर उसके बँदरी वध का समाचार राजा हरिपाल के पास पहुँचा तो राजा उस पर वहुत कुपित हुआ । उसने कहा—

"रे नीच ! जिन वँदरो को मै अपने प्राणो के समान समझता हूँ, तू उन्ही का वध करता है ? मैं तुझे प्राण-दण्ड देता हूँ ।"

अव तो राजाज्ञा से वधिक निपाद को पकडकर वध-स्थल की ओर ले जाने लगे । राजा हरिपाल भी उनके

साथ जा रहा था कि वही व्याघ्र राजा को भी मार्ग मे मिल गया। उसने राजा से कहा—

"राजन्! इसे मृत्युदण्ड मत दो। क्योकि इसका पाप इतना भारी है कि इसको मारने से आपको भी पाप लगेगा। यह तो निश्चय ही अपने पापकर्म का फल स्वय भोगेगा। इस निषाद के बराबर कृतघ्न पापी तो त्रिलोक मे नही मिलेगा। अत ऐसे घोर पापी को दण्डित करके आप भी इसके पाप के भागीदार बनेंगे। इसे स्वय ही फल भोगने दे।"

एक व्याघ्र मनुष्य की भाषा मे इतनी समझदारी की वाते कह रहा है, यह देख राजा हरिपाल को वडा आश्चर्य हुआ। उसने वधिको से कहा—

"व्याघ्र की बात सही है। इस पापी का वध मत करो, पर इसे मेरे नगर-राज्य से निकाल दो, ताकि इसका मुँह देखने का पाप न हो।"

फिर राजा ने व्याघ्र से कहा—

"हे व्याघ्र! आपकी वाते तो वडी रहस्यमयी हैं। आप मे इतना विवेक कहाँ से आया?"

व्याघ्र ने निषाद की कृतघ्नता की पूरी कहानी सुनाने के वाद कहा—

"राजन्! हरिकान्ता नगरी के वन मे एक ज्ञानी मुनि विराजमान है। आप उन्हीं के पास जाइए। वे आपकी सब जिज्ञासाओ को शान्त करके रहस्य को खोल देंगे।"

इतना कह व्याघ्र तो चला गया और राजा हरिपाल मुनि को खोजता हुआ उनके पास पहुँचा। मुनि की वन्दना कर उसने पूछा—

"हे मुने ! ऐसी परोपकारिणी बँदरी को निषाद ने मारा। मरकर वह कौन से लोक मे गई है ?"

मुनि बोले—

"राजन् ! परम सात्त्विक विचार वाली बँदरी ने शुभध्यान और शुभलेश्या मे प्राण त्यागे थे। अत वह सीधी देवलोक गई है।"

"और निषाद ?" राजा ने पुन पूछा—"वह कृतघ्न पापी निषाद जब मरेगा तो कहाँ जाएगा ?"

"यह भी कोई पूछने की बात है ?" मुनि ने कहा—"महापापी निषाद को तो नरक ही मिलेगा।"

राजा ने तीसरा प्रश्न पूछा—

"मुनिवर ! वह व्याघ्र कौन था, जो मनुष्य की वाणी मे विवेकपूर्ण बाते करता था ?"

"वह एक देव था।" मुनि ने कहा—"देव ने ही व्याघ्र का रूप बनाया था।

"राजन् ! सौधर्म देवलोक के इन्द्र के एक सामानिक देव की देवी स्वर्ग से च्युत होकर मर्त्यलोक मे उत्पन्न हुई। उस देवी के अगरक्षक देवो ने देवी के पति देव से पूछा कि इस विमान मे कोई देवी उत्पन्न होगी या नही। तब उस देव ने कहा कि हरिकान्ता नगरी के कपिवन मे सात्त्विक विचारो की एक बँदरी है। वह मरकर देवी होगी।

"हे राजन् ! पूछने वाले देव ने व्याघ्र का रूप बनाया और बँदरो की परीक्षा लेने यहाँ आया था। वही व्याघ्र रूपी देव तुमसे मनुष्य की भाषा मे बाते कर रहा था।"

मुनि के श्रीमुख से यह वृत्तान्त सुनने के बाद राजा हरिपाल को ससार से वैराग्य हो गया और उसने तत्काल दीक्षा अगीकार कर ली। सयम का पालन करते हुए राजा हरिपाल मुनि हरिपाल के रूप मे मृत्यु को प्राप्त हुआ और स्वर्ग मे देव बना।

पूरी कहानी सुनाने के बाद कुचिक श्रेष्ठी ने मुनि मुनिपति से कहा—

"हे मुने ! इस पूरी कहानी मे कृतघ्न निषाद का सा व्यवहार आपने भी मेरे साथ किया है। जैसे निषाद ने प्राणरक्षिका बँदरी के बच्चे मारे और उसके भी प्राण लिये, ऐसा ही आपने मेरे साथ किया है। मैंने आपके साथ सब तरह से भलाई की और मेरा धन चुराकर आपने मेरे प्राण ही हर लिये।"

मुनि बोले—

"कुचिक ! मैंने अनेक दृष्टान्तो से तुझे समझाया कि जैसा तू मुझे समझ रहा है, मैं वैसा नही हूँ। तुझे चोर-पत्नी देवी की तरह मतिभ्रम हो गया है। जैसे देवी नेवला को मारकर पछताई थी, वैसे ही मुझे कलकित करके तू पछतायेगा। मैं तुझे चोर-पत्नी देवी की कहानी सनाता हूँ।" □

२३ ★ ★ ★

मगध देश के एक गाँव मे वीर नाम का कोई चोर रहता था। दिन को सोना और रात को जागना ही उसका काम था, क्योकि चोरी के पाप से वह अपना औरअपनी देवी नामकपत्नी का भरण-पोपणकरता था।

वीर की पत्नी देवी निस्सतान थी। अत दुखी रहती थी। उसके कच्चे मकान की दीवार मे एक नेवली ने प्रसव किया तो देवी ने नेवली के वच्चे को ही पाल लिया। सन्तानहीन स्त्रियाँ पशु-पक्षियो पर अधिक प्रेम करती है, सो देवी भी नेवले पर पुत्र जैसा ही प्रेम करती थी। उसे नहलाती-धुलाती और गाय का दूध भी पिलाती। कालान्तर मे नेवला वडा हो गया।

कुछ समय वाद चोर-पत्नी देवी का भाग्य जागा तो वह गर्भवती हुई। नौ महीने वाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका पुत्र जव कुछ वडा हुआ, अर्थात् घुटनो के वल चलने लगा तो नेवले के साथ खेलने लगा। देवी के पुत्र और नेवले मे दोस्ती हो गई थी। सोते-जागते दोनो साथ ही रहते। देवी का पुत्र जव सो जाता तो नेवला उसके पास वैठा रहता।

एक वार देवी अपने पडोस मे धान कूटने गई। घर पर उसका पुत्र सो रहा था। नेवला उसके पास वैठा चौकसी कर रहा था। देवी का घर कच्चा था। घर मे

कोई विल था। उस विल मे से एक काला सर्प निकला और देवी के सोते हुए पुत्र की ओर वढा। नेवला तो सावधान बैठा ही था। उसने सर्प को दवोच लिया और उसके चार टुकडे कर कर डाले। अपनी स्वामिभक्ति का मूक-सवाद देने नेवला वहाँ पहुँचा, जहाँ देवी पडोस मे धान कूट रही थी।

देवी ने आज पहली वार नेवले को विचित्र स्थिति मे देखा। उसके चारो पैरो से खून लगा था और मुँह भी खून से लिप्त था। धान कूटना वन्दकर देवी अचभे मे आ गई और सोचने लगी—'आज इसके मुँह मे खून कैसे ? मैंने तो इसे हिसक वनने से सदा रोका था। इसकी हिंसक वृत्ति न जगे, इसलिए दूध पिलाती थी।... इसने किसे मारा ? अरे, इसने मेरे पुत्र को ही मारा होगा। हिसक प्राणी की हिंसा जव जागती है तो वह अपने उपकारियो को ही खाता है।'

'हा मेरे लाल !' कहकर देवी ने पछाड खाई और पुत्र के मरने की कल्पना से रुदन करने लगी। उसका शोक एकाएक ही क्रोध मे वदला और धान कूटने का मूसल नेवले मे दे मारा। बेचारा स्वामिभक्त नेवला वही ढेर हो गया।

फिर देवी घर पहुँची तो अपने पुत्र को सकुशल सोता पाया। पास मे ही सर्प के टुकडे पडे थे। अव तो वह सव कछ समझ गई और अब नेवले के लिए रोने लगी।

मुनि मुनिपति ने कुचिक श्रेष्ठी से कहा—

"हे कुचिक ! नेवला मारने का सताप देवी को

जीवन भर रहा। विना विचारे जो कार्य करता है, वह देवी की तरह ही जीवन भर सतापित रहता है।

"श्रेष्ठिन्! तुम भी मुझ पर विना विचारे झूठा कलक लगा रहे हो। याद रखो अन्त मे तुम्हे भी देवी की तरह ही पछताना पडेगा।"

कुचिक बोला—

"हे मुने! आप कितने ही दृष्टान्त सुनाये, पर मेरे हृदय का दुख आपके दृष्टान्तो से दूर होने का नही है। आपने तो मेरे साथ उस पामर जैसा व्यवहार किया है, जिस पामर ने गजमुक्ता देने वाले हाथी को ही सकट मे डाल दिया था।"

"कौन था पामर?" मुनि ने पूछा—"पामर ने हाथी के साथ क्या किया था? तुम्हारे इस दृष्टान्त को भी सुन लूँ।"

□

☆ ★ ★ २४

किसी सघन वन मे सात सौ हथिनियो का नायक एक श्वेत गज रहता था। जैसे वडा राजा अनेक रानियो के साथ रहता है, वैसे ही वह श्वेतगज भी वन मे मस्त सात सौ हाथियो के साथ रहता था।

एक वार वह यूथपति गज जलक्रीडा करने सरोवर पर गया। दो-चार घडी तक उसने सरोवर मे जलक्रीडा की। जव वह लौटने लगा तो उसके पैर मे एक कील गड गई थी। पीडा से चिंघाडता हुआ हाथी उसी स्थान पर गिर पडा।

भूख-प्यास से परेशान श्वेत-गज सात दिन तक एक ही स्थान पर पडा रहा। उसके झुण्ड की हथिनियो मे एक समझदार हथिनी किसी आदमी की खोज मे गई। सयोग से उसे पामर नामक एक व्यक्ति सोता हुआ मिल गया। हथिनी उसे ही उठा लाई और लाकर श्वेत-गज के पास पटक दिया। हाथी ने अपना कील चुभा पैर पामर की ओर वढाया तो वह समझ गया कि हथिनी मुझे यहाँ तक क्यो लाई थी।

पामर ने हाथी के पैर से कील खीच ली। हाथी को वेदना तो हुई, पर वाद मे उसे वडा चैन मिला। उस हाथी ने पामर को ढेर सारे गजमुक्ता और हाथी दाँत दिये। उन्हे लेकर पामर अपने नगर पहुँचा। कुछ ही

दिनो मे उसके ठाठ हो गये। गजमुक्ता और गजदन्त से उसे इतना धन मिला कि उसका जीवनस्तर पूरी तरह वदल गया। पडोसियो ने उसके भाग्य-परिवर्तन का रहस्य पूछा तो उसने सव बाते सीना तानकर बता दी। ये वाते वहाँ के राजा के पास भी पहुँची तो राजा ने पामर को अपने पास बुलाया और पूछा—

"गजमुक्ता देने वाला श्वेतगज कहाँ है ? हम उसे अपने राज्य की शोभा बनाना चाहते है। क्योकि श्वेतगज किसी भाग्यशाली के पास ही होता है।"

पामर ने श्वेतगज का ठिकाना राजा को बता दिया। राजा ने अपने सुभटो द्वारा उसे पकडवा लिया और अपनी गजशाला मे वॉध दिया। वन मे राजा की तरह स्वतन्त्र रहने वाला हाथी अव पराधीन हो गया।

इतना कहने के वाद कुच्चिक ने मुनि मुनिपति से कहा—

"जिस श्वेत गज ने पामर का भाग्य वदला, उसी उपकारी को पामर ने पराधीन कर दिया। इसी को कृतघ्नता कहते है।

"हे मुने ! पामर जैसी ही कृतघ्नता आपने मेरे साथ की है।"

"तुमसे तो पशु अधिक विवेकी होते है।" मुनि ने कुच्चिक से कहा—"जैसा दिखाई दे रहा है, वह सत्य नही है, सत्य उससे भिन्न है, इसका निर्णय एक पशु ने कर लिया था। तुम मनुष्य होकर भी यह निर्णय नही

कर पा रहे हो कि जैसा तुम्हे लग रहा है, वस्तुतः ऐसा नही है।"

"पशु ने यह निर्णय कैसे किया ?" कुचिक ने पूछा—"मुने ! वह दृष्टान्त भी आप सुनाइए, जिसमे कोई पशु मुझसे अधिक विवेकवान सिद्ध हुआ है।"

इतना कह कुचिक मौन हो गया और मुनि दृष्टान्त सुनाने लग गये।

× × ×

अपने पिता कुचिक श्रेष्ठी के पास ही बैठा धनमित्र भी मुनि मुनिपति और अपने पिता का कथन-प्रतिकथन सुना करता था। अब उसके मन मे हलचल-सी होने लग गई।

धनमित्र सोचने लगा—'पिता का पुंजीभूत धन मैंने ही तो लिया है। पर स्थिति ऐसी बन गई है कि सारा दोष मुनि पर ही आ रहा है। उस रात जब उद्यान मे पिता सोने का बडा-सा खण्ड धरती मे गाड रहे थे, तब मैं चुपचाप सब देख रहा था। पिता ने सोचा होगा कि इस रहस्य को वे स्वय ही जानते है। वे मुझे जेब खर्च देने मे आना-कानी करते है, इसलिए सब स्वर्णखण्ड मैंने निकालकर वहाँ इतना ही बडा पत्थर रख दिया।

'पिताजी समझ रहे है कि इस उद्यान मे मुनि ही रहते हैं। मुनि ने सब देखा है। अत. मुनिजी के अलावा उस धन को कोई नही ले सकता।...पर मुनि तो निर्दोष है। अच्छा यही है कि मैं पिता को बता दूँ कि धन मैंने ही लिया है।'

धनमित्र भेद वताना ही चाहता था कि उसका विचार पलट गया। उसने पुन सोचा, 'वताऊँगा अवश्य, पर अभी नही वताऊँगा। क्योकि इन दोनो के कथन-प्रतिकथन मे जो नये-नये दृष्टान्त सुनने को मिल रहे हैं, वे कैसे मिलेगे। आखिर कभी तो वात-मे-वात की शृखला का अन्त होगा। जैसे ही वात-मे-वात की कडी रुकेगी, मैं सव रहस्य वता दूँगा।'

यो सोच-विचारकर धनमित्र मौन हो गया और मुनि की वात सुनने लगा। मुनिवर मुनिपति पशु की विवेकशीलता की कहानी सुना रहे थे। □

★ ★ ★

वैताढ्य पर्वत की एक गुफा मे कोई सिहनी रहती थी। पर्वत के अचल मे जो वन था, उस वन मे और भी जीव-जन्तु रहते थे। सिहनी उसी वन मे अपना शिकार करती और फिर गुफा मे आकर सो जाती। इस पर्वत-गुफा मे अकेली सिहनी ही नही सिह भी रहता था। लेकिन किसी आखेटक राजा ने सिह का वध कर दिया तो सिहनी एकाकिनी रह गई। सिह जव मरा था तो सिहनी गर्भवती थी।

अपने स्वजन-सम्वन्धियो के वियोग का दु ख पशु-पक्षियो को भी मानव से कम नही होता, वल्कि मोह, लोभ, काम आदि गुणो के कारण ही मानव मे पशुता के भी चिन्ह है। जो भी हो, पति-विमुक्ता सिहनी ने सोचा कि अव एकाकिनी तो हो ही गई हू। इस महीने वाद मेरे जो सिह शावक होगा, वही मेरे पति की यादगार होगा।

भविष्य के सपने सँजोते हुए गर्भवती सिहनी वन मे घूम रही थी कि एक ओर से दावानल की भयकर लपटे उठी। वन्य जन्तु सुरक्षित स्थान की ओर भागने लगे। एक ऊँचे सुरक्षित स्थान पर सिहनी भी पहुँच गई। वही एक मृगी और शृगाली भी बैठी थी। समान सकट के

भोक्ता अपना प्रकृत वैर भूल जाते है, सो सिहनी ने यह ध्यान ही नही दिया कि हिरनी मेरा भक्ष्य है। हिरनी भी यह भूल गई कि सिहनी मुझे मारकर खा जाएगी। शृगाली भी सिहनी से नही डरी।

दावानल शान्त होने तक तीन दिन रात ये तीनो प्राणी एक साथ ही रहे। अव तो तीनो मे मित्रता हो गई। तीनो दुःख-सुख की साथिने, गहरी सखियाँ होगई। सिहनी, शृगाली और हिरनी एक ही पर्वतीय गुफा मे रहने लगी। सवेरे ही तीनो निकल जाती। हिरनी जगल मे घास चरती। शृगाली मरे हुओ का मास ढूंढ-खोजकर खाती और सिहनी किसी शशा, अज, हिरन आदि का शिकार करके पेट भरती। दोपहर को तीनो गुफा पर वापस आ जाती और आराम से लेटती, वाते करती। रात को भी तीनो सखियाँ साथ ही सोती।

कालान्तर मे सिहनी का प्रसव काल निकट आया। चार-छह दिन से उसने शिकार करना वन्द कर दिया। हिरनी और शृगाली भी अधिकाश समय उसी के पास वैठने मे विताती। एक दिन सिहनी को प्रसव वेदना हुई और उसने एक सुन्दर सिह शावक को जन्म दिया। वच्चे की अभी आखे नही खुली थी। एक दृष्टि अपने वच्चे पर डालते हुए सिहनी ने दोनो सखियो से कहा—

"सखियो ! मेरे नवजात वच्चे को देखना। प्रसव के वाद मुझे वडे जोरो की भूख लगी है। मै कोई शिकार देख आऊँ।"

"शेर के बच्चे का कोई क्या बिगाड सकता है ?" श्रृगाली ने कहा—"तुम निश्चिन्त होकर शिकार करो। हम दोनो तो यहाँ है ही।"

सिहनी वन मे पैठ गई। कुछ देर वाद जव वह लौटी तो श्रृगाली उसे रास्ते मे मिली। श्रृगाली को देख सिहनी ने शकित होकर पूछा—

"तुम तो मेरे बच्चे के पास थी। उसे यो ही क्यो छोड आई ?"

श्रृगाली बोली—

'हिरनी तो वहाँ है ही। मैं उसी को तुम्हारे बच्चे के पास छोड आई हूँ। चलो देखे।"

दोनो गुफा पर आई तो सिहनी का बच्चा वहाँ नही था। हिरनी पडी सो रही थी। उसका मुँह खून से सना था। श्रृगाली हाय-हाय करके चिल्लाई और बोली—

"वन की रानी ! तुम्हारे बच्चे को यह दुष्टा हिरनी खागई। हाय ! इस पापिनी ने यह क्या किया। तुम्हारे सब अहसानो को भूलकर इसने तुम्हारे ही बच्चे को खाया। तुम चाहती तो इसे कभी का चट कर जाती।"

सिहनी ने हिरनी को जगाया और पूछा—

"सखी ! मेरा बच्चा कहाँ है ? मैं तुम्ही दोनो को उसके पास छोड गई थी।"

हिरनी बोली—

"मुझे कुछ भी नही मालूम ! मैंने श्रृगाली को आपके बच्चे के पास बैठा छोडा था। मुझे नीद आगई सो यहाँ सो गई।"

शृगाली ने क्रोध मे कहा—

"सिहनी रानी ! यह झूठ बोलती है। नीद भी भरे पेट पर आती है। इसे छोडकर मैं आपको लिवाने गई थी। आपके बच्चे को खाकर यह सो रही है और ऊपर से झूठ बोलती है। यदि इसने आपका बच्चा नही खाया तो इसके मुँह से खून क्यो लगा है ?"

सिहनी विवेकशील थी। वह विचार करने लगी कि हिरनी तो तृणभक्षिणी है—घास-पत्ता खाती है। यह तो माँस छू भी नही सकती। शृगाली तो मासाहारिणी है ही। इसी ने मेरे बच्चे को खाया होगा। पर प्रमाण से हिरनी दोषी सिद्ध हो रही है। अत अब विवेक से चोर पकडना है।

सोच-विचारकर सिहनी ने शृगाली और हिरनी दोनो से कहा—

"सखियो ! आपस मे विवाद से क्या मिलेगा ? तुम लोग विचार मत करो। सचाई अभी सामने आती है। दोनो बारी-बारी से वमन करो।"

यह सुनते ही हिरनी ने वमन कर डाला। उसकी वमन मे चबाये हुए पत्ते और घास के तिनके निकले। अब स्यारनी की बारी आई तो वह थर-थर कॉपने लगी। क्योकि चोर की दाढी मे तिनका होता है। सिहनी ने उसे डाँटा—

"चुप क्यो खडी है ? वमन क्यो नही करती ?"

"खाली पेट वमन कैसे करूँ ?" शृगाली ने बहाना

वनाया—"मैंने कुछ खाया ही नही है। सुवह से भूखी हूँ। वमन नही होता।"

सिहनी ने अपना पजा उठाया और कहा—"ज्यादा वहाने करेगी तो इस पजे से तेरा मास नोच लूँगी। जल्दी वमन कर।"

शृगाली को वमन करना पडा। उसकी वमन मे मांस के टुकडे, सिहशावक की त्वचा के रोये तथा चवाई हुई हड्डियाँ निकली। सिहनी ने उससे पूछा—

"यह तो चमत्कार किया तूने कि मेरा वच्चा तूने खाया और खून हिरनी के मुँह से लगा। अब तेरे पास क्या जवाब है? तू अव मेरे पास रहने के योग्य नही। तुझ पुत्रघातिनी को मैं यमलोक पहुँचाती हूँ।"

वस, फिर सिहनी ने शृगाली को ठिकाने लगा दिया।

मुनि मुनिपति ने कुचिक से कहा—

"सिहनी पशु होकर भी तुमसे अधिक विवेक वाली थी। यदि वह विवेक से काम न लेती तो हिरनी को ही मारती।

"तुम भी विवेक से काम लो और सच्चे चोर की खोज करो। मुझ साधु को व्यर्थ ही क्यो कलकित करते हो?" □

मुनि की वात सुन कुचिक ने कहा—

"सिहनी की वात सुन मुझे एक अपकारी सिह की घटना याद आ गई। आप कुछ भी कहे। मैं तो आपकी तुलना उस अपकारी सिह से ही करूँगा।"

"सिह ने क्या अपकार किया था ?" मुनि मुनिपति ने कहा—"अतिम वार इस एक दृष्टान्त को भी सुना दो। आगे फिर मैं तुम्हारी एक नही सुनूँगा और दूसरे ढग से तुम्हारी आँखो का परदा हटाने का प्रयास करूँगा।"

"तो फिर सुनिये।" कुचिक सिह की कथा सुनाने लगा।

हिमालय पर्वत पर तपस्वियो का एक आश्रम था। पत्थर काट-काटकर तापसो ने कोठरियाँ-सी वना ली थी। ससार के कोलाहल मे दूर रहकर ये तापस अपने तन को कसते थे। उन्ही के पास गुफा मे एक असुर भी रहता था। सगति का प्रभाव वडा अमोघ होता है। सो तापसो की सगति के प्रभाव से वह असुर भी अहिंसक हो गया था। उसके अन्दर दयाभाव आ गया था। प्राणिमात्र के प्रति वह दयाभाव रखता था।

एक रात जाडे से सिकुडता हुआ कोई सिह असुर की

गुफा मे आकर सो गया। गुफा सूनी थी, क्योकि असुर रात मे कही चला गया था। आधी रात के बाद असुर जब अपनी गुफा पर लौटा तो उसने उसमें एक सिंह को सोते देखा। सिंह की नीद मे बाधा न पडे, यह सोच असुर बाहर ही लेट गया।

सबेरे जब सिंह जागा तो गुफा के बाहर आया। बाहर उसने असुर को सोते देखा तो सोचा, 'यही इस गुफा का स्वामी है। यदि इसे मार दूँ तो यह गुफा मेरा स्थायी आवास हो जायगी।' यह सोच उस कृतघ्न सिंह ने सोते हुए असुर को मार डाला।

इतना कहने के बाद कुचिक ने मुनि मुनिपति से कहा—

"मुने ! आपने भी उस सिंह की सी कृतघ्नता मेरे साथ की है। आप सागोपाग जल गये थे। मैंने आपकी शुश्रूषा करके आपके फफोलो को ठीक किया। आपके चातुर्मास की पूरी व्यवस्था की और सब विधि आपकी सेवा की। इस भलाई का बदला आपने मेरा धन चुराकर दिया। धन ही मेरा सर्वस्व था। आपने मेरा धन क्या लिया मेरे प्राण ही ले लिये। अब आप कितने ही दृष्टान्त दे। पर मेरे दिल को तब तक शान्ति नही मिलेगी, जब तक मेरा धन आप मुझे वापस नही कर देगे।"

अतिशय रगड करने से चन्दन से भी अग्नि प्रकट हो जाती है। कुचिक द्वारा बार-बार लाछित करने से मुनि

मुनिपति को भी क्रोध आ गया। क्रोध मे उन्होने कठोर शब्दो मे कुचिक से कहा—

"रे कुचिक ! साधुओ के त्याग और उनकी निस्पृहता के अनेक उदाहरण मैंने तुझे सुनाये, पर तेरी समझ मे कुछ नही आया। पर मेरी समझ मे एक बात यह आई है कि बिना पीटे ढोल कदापि नही बजता।

"कुचिक ! मुझे भी अब कठ व्यापारी की तरह अपना रौद्र रूप तुझे दिखाना पडेगा। तभी तेरी अक्ल ठिकाने आयेगी। बिना भय के प्रतीति नही होती। कठ की तरह ही जब मैं तुझे दण्डित करूँगा, तभी तू मानेगा।"

यो एकाएक मुनि की भावभगिमा बदली देख कुचिक के होश उड गये। वह जानता था कि ये मुनि लब्धिधारी और वचनसिद्ध है। अत. वह घबरा गया। उसका पुत्र धनमित्र भी सहम गया। कुछ देर सन्नाटा रहा। फिर कुचिक ने साहस करके बडी विनम्रता से कहा—

"महामुने ! साधुता के अनेक दृष्टान्त तो आपने सुनाये ही है। अब अन्त मे कठ नामक व्यापारी के विषय मे भी सुना दीजिए कि उसने क्या किया था ?"

मुनि बोले—

"कठ एक समृद्ध व्यापारी था। पर बाद मे वह मुनि बन गया। मुनि कठ ने तप की विभूतियो के रूप मे अनेक लब्धियाँ प्राप्त करली थी। वे वचनसिद्ध मुनि थे। वे जो कहते थे, वही होता था। पर मुनिजन अपनी लब्धियो

का प्रयोग कभी नही करते। शाप देना वे अपने तप का कोढ मानते है। पर धर्मरक्षा हेतु मुनि को क्रोध करना पडता है। ऐसे ही एक अवसर पर मुनि कठ को भी क्रोध करना पडा था।

"कुचिक! मैं नही चाहता कि मुझे भी कठ मुनि की तरह क्रोध करना पडे और तेरा अहित हो। अत. तेरी ही भलाई के लिए मैं तुझे कठ की रोमाचकारी कथा सुनाता हूँ।" □

अपने समय मे मगध देश धन-सम्पत्ति, व्यापार-वाणिज्य और कला आदि मे बहुत बढा-चढा था। यहाँ का राजनगर राजगृह स्वर्ग-सा सुन्दर माना जाता था। गली-कूचे, वीथियाँ, चौराहे, राजपथ, भवन—सभी कुछ सुन्दर और मनोहारी थे। यहाँ के राजा थे श्रेणिक। नरराज श्रेणिक वीर-पराक्रमी और श्रावकव्रती शासक थे।

श्रेणिक राजा का ज्येष्ठ पुत्र अभयकुमार ही उनका मत्री था। क्योकि अभय जैसा दूरदर्शी, बुद्धिबल मे अग्रणी और सूझ-बूझ का धनी दूसरा नही था। यो राजा श्रेणिक के और भी सुयोग्य पुत्र थे, पर अभय अभय ही था। चेलना, नन्दा, नन्दमती, धारिणी आदि श्रेणिक के अनेक रानियाँ थी।

श्रेणिक के कुशल शासन और अभय के प्रशासन मे मगध की प्रजा बहुत सुखी थी। मगध का व्यापार बहुत दूर-दूर तक फैला था। कोसल, मालव, अग, बग, पाचाल आदि देशो के व्यापारी अपना माल बेचने राजगृह आते थे। राजगृह के व्यापारी भी यवन देश, चीन, सिंहलद्वीप आदि सुदूर देशो को जाया करते थे। राजगृह के ये श्रेष्ठी-व्यापारी अपने समय के धराकुबेर कहलाते थे। इनके भवन ऊँचे, चमकते-दमकते और बडे ही भव्य थे।

रत्नसागर, कुसुमचन्द्र, गोभद्र, मणिभद्र, धनसार आदि राजगृह के धनी और कोटीश्वर व्यापारी थे। इन्ही मे था एक कठ नाम का व्यापारी। कठ का राजदरवार मे भी आना-जाना था। अपनी पसन्द के रत्न, मुक्ता आदि राजा श्रेणिक कठ से ही मँगाया करते थे।

कठ बयालीस वर्ष का युवा व्यापारी था। उसकी पत्नी भद्रा भी नवयुवती थी। वह सुन्दर और आकर्षक भी थी। पति-पत्नी मे प्रगाढ प्रीति थी। अभी सतान नही थी, इसलिए पति-पत्नी के प्यार मे बँटवारा नही हुआ था। दोनो एक-दूसरे का वियोग मुश्किल से सह पाते थे। श्रेष्ठी कठ सबेरे से शाम तक अपनी दुकान पर रहता था तो घडियाँ गिना करता था कि कव सध्या हो और कव मै घर जाऊँ। इसी तरह सेठानी भद्रा भी सेठ कठ के घर लौटने की वाट जोहा करती थी। प्रतीक्षा का भी अपना एक आनन्द है।

एक दिन कठ कार्यवश कुछ देर से घर लौटा तो सेठानी भद्रा ने अधीर होकर कहा—

"आपसे यह पूछना तो व्यर्थ ही है कि देर से क्यो आये। क्योकि विना काम के आप देर से आ ही नही सकते। पर मेरा एक सुझाव तो मानोगे। वह यह कि आप घर मे ही दुकान जमा ले। हवेली तो वहुत वडी है।"

"सुझाव तो अच्छा है।" कठ ने हँसकर कहा—"दूसरे शब्दो मे यह कहो कि दुकान मे ही घर वना लूँ।

घर दोनो मे से एक भी सभव नही। न तो घर मे दुकान हो सकती है और न दुकान मे घर हो सकता है।"

"हो क्यो नही सकता ?" भद्रा ने तुनककर कहा—"आपकी दुकान छोटी होगी, पर मेरा घर तो इतना बड़ा है कि आपकी दुकान समा सकती है।"

"तो कारण भी सुनो।" कठ ने कहा—"स्त्री हृदय का रूप है और पुरुष मस्तिष्क का। तुम सदा हृदय की बातें करोगी और मैं विचार यानी मस्तिष्क की। इसलिए तुम्हारी दृष्टि से घर मे दुकान हो सकती है और मेरी दृष्टि मे नही। पर तुम्हारे सुझाव से एक पथ मुझे सूझ गया है।"

"कौन-सा पथ ?" सेठानी ने आतुर होकर पूछा। सेठ कठ ने बताया—

"जिस वस्त्रवीथी मे हमारी दुकान है, उसी के पास एक विशाल भूखण्ड खाली पडा है। मैं उसे कल ही खरीद लूँगा और वहाँ एक नया भवन बनवाऊँगा। सालभर मे पचमजिला भवन बनकर तैयार हो जाएगा। वह भवन हमारी दुकान के निकट भी होगा फिर तो मैं घर जल्दी आ जाया करूँगा। यह भवन पुराना भी हो गया है और वस्त्रवीथी से काफी दूर पडता है। रथ में बैठकर जाने पर भी काफी समय लग जाता है।"

सेठानी भद्रा प्रसन्न हो गई और बोली—

"चूकि मस्तिष्क हृदय से ऊपर होता है, इसीलिए

पुरुष का स्थान भी स्त्री से ऊपर होता है। पर आज तो हृदय की, अर्थात मेरी जीत हो गई।"

"जीत तो तुम्हारी हुई, पर सहारा तो मस्तिष्क का लेना पडा।" सेठ ने हँसकर कहा—"पति-पत्नी मे हार-जीत करना मूर्खता है। दिल-दिमाग की तरह दोनो एक दूसरे के पूरक है।"

यह कह सेठ ने सेठानी को अक मे भर लिया और पति का साकार प्यार पाकर सेठानी भी निहाल हो गई।

कालान्तर मे कठ सेठ का नया भवन वनकर तैयार हो गया। चन्दन की किवाडो पर सोने के पत्तर मढे थे और उन पर भी जहाँ-तहाँ रत्न टँके थे। वडा ही सुन्दर भवन था। भवन के पीछे एक मनोहारी भवन वाटिका थी। भवन प्रागण के वीचोवीच आम का पौधा भी था, जो भावी वृक्ष का वचपन था। अव कठ विधि-विधान से इस नये भवन मे प्रवेश करना चाहता था। इसके लिए उसने राजगृह के राजमान्य ज्योतिषियो को बुलाया और उनसे गृह-प्रवेश का मुहूर्त पूछा। गृह-नक्षत्र, लग्न आदि पचाग पर विचारकर ज्योतिषियो ने एकमत होकर कठ से कहा—

"श्रेष्ठिन्! मुहूर्त अच्छा है, आप गृह-प्रवेश कीजिए।"

पर कठ ज्यो ही आगे वढा कि सभा मण्डप के

नैऋत्य कोण मे उसे छीक आई। ज्योतिषियो ने उसे तत्काल रोका—

"श्रेष्ठिवर ! यह छीक अपशकुन है। इस समय गृह-प्रवेश मत करो, वरना महाहानि होगी।"

कठ ने ज्योतिषियो की वात मान ली और गृहप्रवेश स्थगित कर दिया। फिर ज्योतिषियो ने दूसरा मुहूर्त छाँटा। जव वह मुहूर्त-वेला आई तो कठ भद्रा सेठानी सहित गृह-प्रवेश करने लगा, तभी एक कुत्ता मुँह मे भक्ष्य लेकर दक्षिण दिशा से आया और कठ की वाई ओर वैठ गया। शंकित होकर कठ ने ज्योतिषियो से पूछा—

"यह कैसा शकुन है—शुभ या अशुभ ?"

ज्योतिषियो ने वताया—

"यह तो वहुत ही अच्छा शकुन वना है। मुहूर्त तो शुभ है ही, शकुन भी शुभ वन गया। इससे नये घर मे धन-धान्य की वृद्धि होगी।"

कठ ने नये भवन के मुख्य द्वार पर पैर रख दिया। तभी उस कुत्ते ने अपने कान खुजलाये। कठ ठिठक गया और ज्योतिषियो से पूछा—

"अव ? अव आगे वढूं या पीछे लौटू ? इसी कुत्ते ने कान खुजलाये है।"

"यह तो और भी अच्छा है।" ज्योतिषियो ने कहा—"यह पहले शकुन की पुष्टि है। धन-धान्य के साथ तुम्हे यशलाभ भी मिलेगा।"

'णमो अरिहताण' कहकर कठ नये भवन मे पहुँच गया। दास-दासियाँ सब जहाँ-तहाँ व्यवस्थित होगये। पुरानी हवेली मे दुकान के नौकर रहने लगे। नये भवन की वास्तु शोभा को देख-देखकर सेठानी भद्रा फूली नही समाती थी। कठ ने अपने इष्ट-मित्रो, कुटुम्बियो और नागरिको को प्रीतिभोज दिया।

एक रात कठ और भद्रा बाते करते-करते सोये। सोती हुई भद्रा स्वप्नो के लोक मे पहुँच गई। रात्रि के अन्तिम प्रहर मे सेठानी भद्रा ने एक विचित्र स्वप्न देखा तो जब आँख खुली तो पास ही सोये अपने पति कठ को जगाकर बोली—

"स्वामी! समुद्र पर तैरती हुई एक नौका मैंने सपने मे देखी है। नौका-स्वप्न का क्या फल होता है?"

"तब तो तुम एक भाग्यवान पुत्र की माता बनोगी।" कठ ने कहा—"स्वप्नशास्त्र मे मैंने पढा है कि स्त्री यदि स्वप्न मे तैरती नौका देखे तो भाग्यधन्य पुत्र की जननी बने।"

इस शुभ स्वप्न-फल को सुनकर भद्रा बहुत प्रसन्न हुई। आज वह घर की सब दासियो पर अधिक प्यार जता रही थी। गोमती नामक एक धाय ने पूछ ही लिया—

"स्वामिनी! आज आप सब पर प्रेम वर्षा कर रही है। ऐसा क्या पा गई?"

"आ मेरे कक्ष मे आ।" गोमती का हाथ पकडकर

भद्रा ने कहा—"तुझे तो सब कुछ वताऊँगी ही। क्योंकि तू तो उसकी धाय अम्मा बनेगी।"

एकान्त मे ले जाकर भद्रा ने गोमती से कहा—

"गोमती! मेरा पॉव भारी होगया है। इसी की मुझे खुशी है। पॉच धायो मे तेरा नाम सवसे ऊपर रहेगा। नौ महीने वाद मैं तुम सवको सोने के कडे पहनाऊँगी।"

"तो आज कुछ नही?" गोमती ने कहा—"सूनी खुशखवरी मैं नही सुनूगी।"

"आज कुछ वॉटूगी तो वात फैल जाएगी।" भद्रा वोली—"ऐन वक्त पर भेद खुले तो कुछ वात ही और होगी।"

"तो भेद छिपाने की रिश्वत ही दो।" गोमती ने मचलकर कहा।

"तू वडी नटखट है।" यह कहकर सेठानी ने गोमती को अपने गले का हार दे दिया।

एक-एक दिन से महीना हुआ और महीने-महीने नौ महीने पूरे होगये। नौ महीने और दस दिन वाद सेठानी भद्रा ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। श्रेष्ठी कठ के भवन मे हर्ष का सागर उमड पडा। हर दासी जैसे आकाश मे उड रही थी। सेठ ने भरे हाथो से दान दिया। उसके पास मित्रो-सम्वन्धियो की वधाइयाँ आईं। वारहवे दिन नामकरण सस्कार हुआ और श्रेष्ठिपुत्र का नाम ...दत्त रखा गया।

सागरदत्त का पालन-पोषण पाँच धायों के हाथो मे होने लगा। दूध पिलाने वाली क्षीरधात्री गोमती थी। स्नान कराने वाली मज्जनधात्री, गोद मे लेने वाली अक-धात्री, खिलाने वाली क्रीडाधात्री और लोरी गाकर सुनाने वाली शयनधात्री—इस तरह पॉच धाये थी। छठी जो सबके ऊपर थी, वह ममतामयी माँ थी सेठानी भद्रा।

इस तरह लाड-प्यार मे पलते हुए सागरदत्त बडा होने लगा। होते-होते वह आठ वर्ष का होगया। सागर-दत्त गोरे रग का सुन्दर बालक था। उसकी आँखे कमल पखुडियो जैसी सुन्दर व आकर्षक थी। माथा अष्टमी के चन्द्र जैसा और मुखच्छवि मन को मोहने वाली थी। सेठ कठ ने अपने आठवर्षीय पुत्र सागरदत्त को विद्यारम्भ समारोह के बाद कलाचार्य के पास कला-निष्णात होने भेज दिया।

सागरदत्त कलाचार्य के पास रहकर ही अध्ययन करने लगा। कभी-कभी माता-पिता के बुलाने पर गुरु की अनुमति लेकर वह थोडी-बहुत देर के लिए घर आता था। कभी गोमती धाय उसके पास विद्यालय जाकर उसके कुशल समाचार ले आती। गोमती यद्यपि सागर-दत्त की धायमाता ही थी, पर उसके हृदय मे सागरदत्त के प्रति विशेष ममता थी। सागरदत्त भी उसे माँ की तरह ही मानता था।

ज्यो-ज्यो दिन बीतते जाते थे, सागरदत्त कला के

सोपान पार करता जाता था। एक वार दो मुनि आहार के लिए कठ के घर पधारे। कठ मुनियो के लिए आहार लेने भीतर गया तो उसके आँगन मे खडे आम्र वृक्ष पर वैठा एक मुर्गा कहने लगा—

"हे सेठ! मुझे भी भोजन करा। मैं तेरे पुत्र को राजा वनाऊँगा ?"

मुर्गे की वाणी का रहस्य जानने वाले मुनिद्वय मे से एक ने कहा—

"मुर्गा ठीक कहता है। यह श्रेष्ठि-पुत्र सागरदत्त को राजा वनायेगा।"

"सो कैसे ?" दूसरे मुनि ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए पहले मुनि से पूछा—"क्या मुर्गा ठीक कह रहा है ?"

इतने मे कठ सेठ भी आहार सामग्री लेकर आगया। मुनिद्वय की मुर्गा-चर्चा कठ ने भी सुनी तो उसने भी पहले मुनि मे पूछा कि मुर्गे के कथन का रहस्य क्या है। दूसरे मुनि तथा कठ को सम्वोधित करते हुए पहले मुनि ने कहा—

"यह मुर्गा निश्चय ही सागरदत्त को राजा वनायेगा। समय आने पर देख लेना।"

मुनि-वचनो को प्रमाण मान कठ ने मुर्गे को नीचे उतारा। पहले मुनियो को आहार वहराया और फिर मुर्गे को भी भोजन कराया। फिर तो वह मुर्गा कठ का पालतू हो गया।

□ □ □

राजा श्रेणिक के दरवार मे एक दिन वस्त्रो की चर्चा छिड गई। चीन का रेशम असली रेशम होता है यह तो सबने माना, पर वस्त्रो के विषय मे मतभेद रहा। सभा मे एक व्यापारी भी था—विदेशी व्यापारी। उसने खड़े होकर कहा—

"अन्नदाता ! ग्वालिन अपना दही कभी खट्टा नही वताती। सब अपने ही देश का कपडा वढिया वतायेगे। पर मैं व्यापारी हूँ। हर देश की बानगी मैंने देखी है। सो निष्पक्ष भाव से कहूँगा कि यवन देश के-से वारीक और स्वाभाविक रग के कपडे कही नही मिलेगे। यवन सुन्दरियाँ उन कपडो मे ऐसी फवती है, जैसे इन कपडो के साथ ही इनका जन्म हुआ हो।"

"तुम्हारी वात हम मानेगे।" श्रेणिक ने कहा—"अव हम यवन देश से ही कपड मँगायेगे। नेपाल के रत्न-कम्वल हमने देखे है। बहुत चीजे देखी है। पर यवन देश कौन जाएगा ?"

एक सभासद ने उठकर कहा—

"श्रीमान महाराज ! श्रेष्ठी कठ वस्त्र व्यापार मे राजगृह का अगुआ है। उसे अच्छे कपडो की पहचान भी है। वही यह काम कर सकता है।"

श्रेणिक ने महाप्रतिहार को आज्ञा देकर कठ को बुलवाया और कहा—

"श्रेष्ठिन् ! विदेश तो तुम जाते ही हो। इस वार हमे भी व्यापार को शौक लगा है। पर हमारी ओर से

व्यापार तुम करोगे। नही समझे ? लो मैं समझता हूँ। राजगृह से तुम यवन देश जाओ। जो माल वहाँ खपता हो, वह यहाँ से ले जाओ। उधर से हर प्रकार के वस्त्र ले आओ। सभी वस्त्र हम अपने रनिवास के लिए क्रय कर लेगे। इस व्यापार मे लाभ तुम्हारा और हानि हमारी।"

"हानि सहने का जितना साहस व्यापारी मे होता है, उतना राजा मे नही होता अन्नदाता!" कठ ने हँसकर कहा—"हानि-लाभ—दोनो व्यापारी के साथ रहते है।"

श्रेणिक भी मजाक पर उतर आये। बोले—

"पर राजा की हार व्यापारी की हानि से बहुत ऊँची होती है। यदि व्यापारी हानि-लाभ के साथ चलता है तो राजा भी हार-जीत को दाएँ-बाएँ रखता है।"

"फिर तो राजा जुआरी हुआ।" एक मत्री ने कहा—"क्योकि हार-जीत का सम्बन्ध तो जुआ से होता है। राजा तो जय-पराजय मे खेलता है।"

"यह तो शब्दो का खिलवाड रहा।" मत्री अभयकुमार ने कहा—"जय-पराजय, हार-जीत या हानि-लाभ—कुछ भी कहो—इस द्वन्द्व से मुक्त न राजा है न रक। व्यापारी-भिखारी सब इस द्वन्द्व मे बँधे हैं।"

"बात कहाँ से कहाँ पहुँच गई ?" श्रेणिक ने कठ से कहा—"तो तुम यवन देश जाने की तैयारियाँ करो। मुहूर्त दिखवा लेना।"

"जो आज्ञा" कहकर सेठ कठ अपने घर आया और सेठानी भद्रा से वोला—

"राजसभा जाने का आज तो अच्छा पुरस्कार मिला प्रिये !"

"मै अर्द्धांगिनी हूँ, आधा मुझे भी दो।" भद्रा ने कहा—"क्या पुरस्कार मिला है ?"

"आधा क्यो वरावर ही लो।" कठ ने कहा—"राजा श्रेणिक ने हमे एक-दूसरे का वियोग दिया है। जितने दिन तुम्हे मेरा वियोग सहना पडेगा, उतने दिन मुझे तुम्हारा। वरावर रहा, आधे-आधे मे तुम घाटे मे रहती।"

"आप भले ही मेरा वियोग सहे, पर मैं आपका वियोग एक पल भी नही सहूँगी।" सेठानी ने कहा— "देखे, कौन आपको मुझसे अलग करता है ?"

"दिल वाला दिमाग की वात कैसे कहे ?" सेठ कठ ने एक निश्श्वास लेकर कहा—"यह तुमने क्या कहा कि मैं भले ही तुम्हारा वियोग सहूँ, पर तुम एक पल भी नही सहोगी ? यह तो वही बात हुई जैसे कोई कहे कि हर वर्ष लड़कियो के विवाह ज्यादा होते है लडको के कम।"

सेठानी अपने कथन पर झेप गई। फिर बोली—

"अच्छा मजाक छोडो। यह वताओ कि किस बात का वियोग सहना होगा।"

कठ ने यवन देश जाने की बात भद्रा को विस्तार से वताई। भद्रा ने आग्रह किया—

"मेरे राजा तो आप है। मैं आपको कही नही जाने दूँगी।"

"तुमने हृदय की, यानी अपनी बात कही।" कठ ने कहा—"अब दिमाग की, यानी मेरी बात सुनो। वह यह कि राजाज्ञा टाली नही जा सकती। फिर इस वियोग मे तो हम दोनो की भलाई है। जैसे कच्चा घडा अवा मे पककर लाल होता है, वैसे ही वियोगाग्नि मे प्रेम परिपक्व होकर अधिक गहरा हो जाता है।

"प्रिये! तुम्हारी याद के कारण मैं जल्दी ही लौटूँगा।"

सेठानी बोली—

"यदि कोई यवन सुन्दरी मिल गई तो मुझे भूल जाओगे।"

"छी! छी! कैसी बाते करती हो?" कठ ने कहा—"मै स्वदारा-सन्तोपी श्रावक हूँ। तुम जैसी स्नेहशीला पत्नी को पाकर मैं किसी देवकन्या की भी कल्पना नही करूँगा, यवन सुन्दरी तो दूर की बात रही।"

"बस मै निहाल हो गई।" भद्रा की आँखो मे आँसू आ गये। उसने कहा—"पर मेरे सहारे के लिए तो कुछ प्रबन्ध कर जाइए। सागरदत्त भी कलाचार्य के पास रहता है। अकेली मैं किसके सहारे दिन काटूँगी?"

"तो अब मैं दुकान चलूँ?" कठ ने कहा—"मैं क्या आज जा रहा हूँ? यवन देश जाने से पहले तुम्हारी कुछ व्यवस्था करके जाऊँगा।"

कठ दुकान पर गया। नौकर-चाकर भीतर गोदाम मे काम कर रहे थे। मुनीम बिक्री कर रहा था। दुकान कपडे की थी। कठ मसनद के सहारे अकेला बैठा आने-जाने वालो को देख रहा था। तिलकधारी एक ब्राह्मण हाथ मे पिजडा लिये आ रहा था। उसके पिजडे मे तोता-मैना की जोडी थी। जब ब्राह्मण कठ के निकट आगया तो कठ ने पूछा—

"यह शुक युगल बेचोगे ?"

"बेचूगा !" ब्राह्मण ने कहा—"आप ही कठ श्रेष्ठी है न ? मैं इन्हे लेकर आपके पास ही आया हूँ। जोडी पाँच सौ मुद्राओ की है।"

"मुद्राएँ पाँच सौ ही दूंगा।" कठ ने कहा—"पर तुम इन्हे लेकर मेरे पास ही क्यो आरहे थे ?"

विप्र बोला—

"इसका रहस्य तो तोता-मैना ही बतायेंगे। इन्होने ही मानव वाणी मे मुझे तुम्हारे पास लाने की प्रेरणा दी है।"

सेठ ने तोता से पूछा—हे शुकराज ! आपने मेरे घर पर आना पसन्द क्यो किया ?

शुक ने कहा—सेठ ! हम पूर्वभव मे देव-गुरु-धर्म की विराधना करने के कारण ही यहाँ शुक व मैना बने है, यहाँ शुभयोग से पूर्वजन्म की स्मृति के कारण मैंने यह जान लिया कि तुम एक धार्मिक और उदारमना श्रावक हो, तुम्हारे यहाँ रहने से हमे साधु-सतो के दर्शन—धर्म

श्रवण का अवसर मिलेगा। इस कारण इस गरीव व्राह्मण को मैंने तुम्हारे पास ले आने का कहा है, तुम हमे धर्म-सहयोग देकर तिर्यंच योनि से छुटकारा पाने मे सहायक वनोगे।"

शुक युगल की आश्चर्यभरी वाते सुनकर कठ ने एक गहरा उच्छ्वास छोडा और सोचा—'भद्रा का मन वहलाने के लिए तोता-मैना की यह जोडी खूव काम देगी।'

थोडी ही देर वाद एक तपस्वी सेठ की दुकान पर भिक्षा के लिए आया। कठ की दुकान से एक तिनका उडकर तापस की जटाओ मे उलझ गया। भिक्षा लेकर तापस जव जाने लगा तो कुछ दूर से लौटकर आया और वडी ग्लानि के स्वर मे वोला—

"सेठ! आज तो हमसे भारी पाप हो गया। तुम तो मुझे क्षमा कर ही दोगे, पर मेरी आत्मा मुझे कभी क्षमा नही करेगी।"

"क्या हुआ महात्मन्?" कठ ने पूछा—"मैं भला आपको किस वात के लिए क्षमा करूँगा?"

तापस ने अपनी जटाओ से तिनका निकाला और कठ की दुकान पर पटकते हुए कहा—

"भूल से यह तृण मेरी जटाओ मे चला गया था। अपने हाथ से कोई सोना दे तो स्वीकार है, पर अदत्त रूप मे तो तृण लेना भी पाप है। तुम्हारे दिये विना यह तिनका मैं भूल से ले गया। अव तो तुम्हारी यह तलवार ही मेरे पाप का प्रायश्चित्त होगी।"

यह कह तापस ने कठ के पास रखा उसका खड्ग खीच लिया और अपनी गर्दन नापने लगा। यह कौतुक देखने भीड़ इकट्ठी हो गई। कठ ने लपककर अपना खड्ग तापस से ले लिया और कहा—

"तृण आप धोखे से, अनजाने में अथवा भूल से ले गए थे। इसके लिए इतना बडा प्रायश्चित्त करेंगे आप ?"

तापस बोला—

"सेठ ! अग्नि मे यदि भूल से हाथ गिर जाए तो क्या वह उसे जलाती नही ? भूल से एक चिनगारी यदि छप्पर मे गिर जाए तो पूरे गाँव को भस्म कर डालती है। भूल से किया पाप भी पाप होता है और उसका फल भी मिलता है।"

तापस की बातो से कठ बहुत प्रभावित हुआ। उसने बड़े आदर से तापस को अपने पास बैठाया। भीड चली गई तो कठ ने तापस से कहा—

"मैंने बहुत तपस्वी देखे है। पर आप जैसा महा-तपस्वी तो आज ही देखा। क्या मेरे ऊपर भी कुछ कृपा करेंगे ?"

"तुम क्या चाहते हो ?" तापस ने आँखे छिपाकर कठ की भाव भगिमा देखी और फिर कहा—"जो हम कर सकते है, वह अवश्य करेंगे।"

कठ ने कहा—

"कुछ दिनो के लिए मै विदेश जा रहा हूँ। मेरे पीछे आप जैसा धर्म-पुरुष घर पर रहेगा तो मेरे घर पर पाप

की छाया नही पडेगी। मेरी पत्नी आप से धर्मचर्चा सुन लिया करेगी।"

"राम-राम राम!" तापस ने मुँह वनाकर कहा—"हम गृहस्थ के संसर्ग मे कदापि नही रहते। नारी नरक का द्वार होती है सेठ! क्रोध का वल यदि अहंकार है तो काम का वल मात्र नारी है। मनुष्य के शत्रुओ मे पहला काम है। हम तुम्हारी यह वात कदापि नही मानेगे। कोई और कार्य हो तो कहो।"

कठ सोचने लगा—'ऐसा सयमी, ज्ञानी और तपस्वी पुरुष ही मेरे पीछे घर मे रहने के योग्य है। तोता-मैना की जोडी और यह तापस—ये तीनो सेठानी भद्रा का समय काटने के लिए वहुत ठीक रहेगे। पर तापस तो राजी नही होता। यदि यह मान जाए तो कितना अच्छा हो।'

कुछ सोच-विचार के वाद कठ ने तापस से पुन आग्रह की भाषा मे कहा—

"महात्मन्! जो तपस्वी कामजित् होते हैं, वे कभी भयभीत नही होते। फिर आपको मेरी पत्नी के पास कव रहना है। आपका साधना कक्ष हवेली के वाहरी भाग मे होगा। सेवक आपको भोजन दे जाया करेंगे। मैं इसका कडा आदेश कर दूँगा कि सेविकाएँ आपके पास नही आया करेंगी। हाँ, यदि आप आज्ञा देगे तो मेरी पत्नी भद्रा आपकी धर्मचर्चा सुनने आ जाया करेगी।"

"तो तुम हमारे सयम को चुनौती देते हो?" तापस ने कहा—"तव हम अवश्य तुम्हारे घर रहेगे। हम तो साँपो मे खेलने वाले तपस्वी हैं।"

कठ की मनचाही हो गई। तापस और तोता-मैना की जोडी लेकर वह घर पहुँचा। तोता-मैना भद्रा को सौंपे और कहा—

"तुम्हारे भाग्य से ये वडे चतुर पक्षी मिले है। ये तो शास्त्र की वाते तुम्हे सुनाया करेंगे। और तो और कामजयी और महाअपरिग्रही एक तपस्वी भी मिले हैं। ये घर रहेगे।"

कठ ने सव वाते सेठानी भद्रा को समझा दी। फिर उसने अपनी तैयारियाँ की और यथादिन यवन देश के लिए प्रस्थान कर दिया।

□ □ □

भद्रा स्वय ही तापस को भोजन देने जाती। पहले दास-दासियाँ भोजन दे जाया करते थे। पर अव भद्रा सेठानी आती थी। पहले दिन जव भद्रा आई तो तापस ने कहा—

"धार्मिक कथा-कहानियाँ सुनने तो तुम रोज आती थी। आज भोजन देने आ गई ? इतना कष्ट क्यो ?"

"इसमे कष्ट की क्या बात है ?" सेठानी ने कहा—"आज मैंने स्वय ही आप के लिए बनाया था। सोचा मुझे ही जाना चाहिए।"

तापस मौन होकर भोजन करने लगा। फिर खाते-खाते वोला—

"सेठानी ! तुम कोई जादू भी जानती हो क्या ?"

"जादू ? कैसा जादू ?" सेठानी भद्रा ने चौककर पूछा।

तापस बोला—

"तुम्हारे हाथो मे जादू है। ऐसा स्वादिष्ट भोजन मैंने कभी नही खाया।"

"भोजन की तारीफ तो वे भी बहुत करते थे। घर मे चार रसोई बनाने वाली है। चारो मिलकर बनाती है। पर उनके लिए मैं ही बनाती थी। जादू श्रद्धा मे होता है। मैंने श्रद्धापूर्वक बनाया है, इसलिए आपको स्वाद लग रहा है।"

"तुम भूलती हो सेठानी !" तापस बोला—"जादू प्रेम में होता है, श्रद्धा मे नही। प्रेम से जहर का भोजन भी अमृत हो जाता है। पर तुमने यह अच्छा नही किया।"

सेठानी रोमाचित हो गई। तापस के प्रेम शब्द मे वासना का रूप था। सेठानी भी कामशरो का शिकार हो चुकी थी। दोनो एक दूसरे के मन की जानते थे। पर खुलने मे सकोच हो रहा था। भय भी था।

अन्त मे जब तापस ने कहा कि तुमने यह अच्छा नही किया तो सेठानी ने पूछा—

"क्या अच्छा नही किया ? मैं जानना चाहती हूँ।"

"तुम कुछ दूर बैठी हो।" तापम ने कहा—"तनिक पास आ जाओ।"

सेठानी पास खिसक गई। तापस ने सेठानी की आँखो मे झाँकते हुए कहा—

"स्वादिष्ट भोजन करने की तुमने आदत डाल दी, यही अच्छा नही किया। तुम इतनी बडी सेठानी मेरे

लिए रोज वना नही सकती। मैं भी नही चाहूँगा कि तुम रोज वनाओ रसोईदारिन के हाथ का वना भोजन जब मैं रोज किया करूँगा तो तुम्हारे हाथ की याद आया करेगी। किसी की आदत विगाड देना क्या अच्छी वात है ?"

"मैं उनके लिए रोज बनाती थी।" सेठानी बोली—"आपके लिए भी वनाया करूँगी।"

"उन्हे तो तुम खिलाती भी थी।" तापस बोला—"मुझे भी खिलाया करोगी ?"

"आपके चरण भी चाँपा करूँगी।" सेठानी वोली—"नारी कभी स्वामिनी बनकर नही रह सकती। वह हमेशा किसी की दासी वनकर रहना चाहती है।"

"तो आज खिलाओ।" तापस ने कहा।

सेठानी ने इधर-उधर देखा और एक ग्रास तापस के मुँह मे दे दिया। तापस ने सेठानी का हाथ पकड लिया। फिर बोला—

"नारी दो की दासी नही हो सकती। जब कठआयेगा तव तुम उसी की हो जाओगी।'

"ऐसा नही होगा।" भद्रा बोली—"मैं आपके साथ कही भाग चलूगी। दोनो राजगृह छोड देगे।"

कुछ वाते और हुई। सेठानी भीतर चली गई। उसने अपनी दासी को आदेश दिया—

"तापस महाराज से कहना कि सध्या का भोजन वे यही करेगे। चौकीदार की तरह उनका वाहर पडे रहना ठीक नही। इससे उनकी और हमारी दोनो की प्रतिष्ठा गिरती है।"

उस रात तापस सेठानी भद्रा के शयन कक्ष के बाहर दालान मे सोया। सवेरे उठकर दोनो एक दूसरे को देखकर मुस्कराये। तापस बोला—

"तुमने मेरा अब तक का तप खण्डित कर दिया।"

"और तुमने क्या कसर छोडी।" सेठानी बोली—"तुमने भी तो मेरा पातिव्रत्य खडित किया।"

दोनो के भोग-भीवन की यह पहली रात थी। सोने के पिजडे मे टगे तोता-मैना ने सब सुना, सब सब जाना। मैना तोता से बोली—

"कन्त! क्या यह अनाचार हमे देखते रहना चाहिए ?"

"और क्या करे ?" तोता बोला—"दोनो ही अनाचारी है। कठ के आने पर ही सब कुछ कहा जायगा। तब तक मौन रहना है।"

अब तो घर के दास-दासियाँ भी भीतर-ही-भीतर जान गये कि तापस और सेठानी का आपस मे अनुचित सम्बन्ध है। पर कोई डर के कारण कुछ कह नही सकता था। सेठानी स्वामिनी थी, पर तापस की दासी ही थी। दरअसल वह काम की दासी थी। वह तापस के इशारो पर ऐसे नाचती थी, जैसे मदारी के इशारो पर बँदरी नाचती है। सेठानी भद्रा तापस के वश मे इतनी अधिक थी कि कभी-कभार जब उसका पुत्र सागरदत्त आता तो उसे उसका रहना भार लगता। वह उससे कहती—

"बेटा सागर! अध्ययन के दिनो मे ज्यादा मटर-गश्ती अच्छी नही होती। जल्दी चले जाया करो। गोमती

तो रोज तुम्हारे पास हो ही आती है। जो कुछ मँगाना हो उसी से कह दिया करो।"

भोला सागरदत्त कहता—

"माँ! मुझे तो तुम्हारी याद खीच लाती है। तुम बडी अच्छी माँ ह, जो मेरी पढाई का इतना ख्याल करती हो।"

इतनी कथा सुनने के बाद कुंचिक सेठ ने कहा—

"मुने! पर कठ ने क्या किया, वह तो वताइए। मैं तो डर रहा हूँ कि कठ की तरह आप मेरे साथ जाने क्या करें।"

"पूरी कहानी सुन लो।" मुनि मुनिपति बोले—"जो कुछ हुआ, वह सब सामने आ जाएगा। सत कभी किसी पर रुष्ट नही होते। दुर्वचनो का उन पर कोई प्रभाव नही होता। तुमने बुरे-से-बुरे शब्दो मे मुझ पर कृतघ्नता, चोरी, विश्वासघात के लाछन लगाये, पर मुझे किंचित् भी वुरा नही लगा।

"सतो का क्रोध अपने लिए नही होता। दूसरे के हित के लिए ही होता है। कठ का क्रोध भी धर्महित और पर-हित के लिए था। वीच मे मत टोको। अव तुम आगे की वात सुनो। . सेठानी भद्रा और तापस वासना-पक मे डूवे थे। दोनो एक दूसरे के शरीर के दास थे, पर सेठानी भद्रा तो पूरी तरह तापस के सकेतो पर नाचने वाली किकरी थी। .....अव आगे जो हुआ, वह वडा ही रोमाचक है।" □

काम-भोग के साथ स्वादेन्द्रिय अपना रग दिखाती है। तापस अब मास-मदिरा भी खाने लगा। भोगवश सेठानी भद्रा उस पर पानी की तरह धन बहाने लगी। अब तापस का स्वर सबसे ऊपर था। वही घर वाला था।

मैना ने तोते से पुन. कहा—

"तुम भले ही चुप रहो, पर मैं तो इस पापाचार को रोकूँगी। कठ सेठ के प्रति हमारा भी कुछ धर्म है।"

"लेकिन यह अवसर तो मौन रहने का है।" तोता बोला—"विवेक से काम लो।"

मैना नही मानी। उसने कहा—

"हे तापस ! धिक्कार है तुझे। तब तो एक तृण के अदत्त आदान के लिए अपना सिर काट रहा था और आज सेठ का धन यो उडा रहा है, जैसे यह धूल-मिट्टी हो। सेठानी को भी तूने पथभ्रष्ट कर दिया तू नही जानता . ।"

"ठहर, मैं तुझे बताती हूँ।" सेठानी भद्रा पिंजडे की ओर लपकी—"आज तुझे जीवित नही छोडूगी। हमारी बिल्ली और हमी से म्याऊँ ?"

यह कह सेठानी भद्रा ने पिंजडे की खिडकी खोल

मैना को पकडना चाहा कि वह फुर्र उड गई । तोता मौन साधे बैठा रहा और पालतू तोते की तरह ही सीता-राम, सीता-राम रटने लगा। भद्रा ने उससे कुछ नही कहा और खिडकी बन्द कर दी।

एक दिन भूदेव नाम का एक ज्योतिषी कठ के घर आया। वह कठ सेठ का यजमान नैमित्तिक था। चार-छह साल बाद, कभी साल भर बाद भी जब मौका मिलता कठ सेठ के यहाँ से अपनी वृत्ति (दक्षिणा) लेने आया करता था। इस बार कठ घर पर नही थे, तो भद्रा ने कहा—

"वे जो भी आपको देते थे, सो तो आकर देंगे ही। ये ग्यारह स्वर्णमुद्राएँ मेरी ओर से रही ।"

"तुमने श्रद्धामान से दी तो ग्यारह ग्यारह सौ के बराबर हैं।" भूदेव नैमित्तिक ने कहा—"लेकिन हमारे छोटे यजमान सागरदत्त भी आज नही मिले। खैर, अब की बार दोनो से मिलेंगे ।"

"उसके तो जब मन मे आती है, तभी चला आता है।" सेठानी भद्रा ने कहा—"हाँ, आप यह तो बताइए कि सागर के बापू विदेश से सकुशल तो लौटेंगे ।"

भूदेव ने प्रश्न लग्न पर विचार किया और बताया—

"सेठजी बडी समृद्धि लेकर लौटेंगे ।"

इतना पूछ सेठानी भीतर चली गई। तापस दोनो की बात ध्यान से सुन रहा था। जब भद्रा चली गई तो तापस ने भूदेव नैमित्तिक से पूछा—

"एक वात मुझे भी वताइए। इस मुर्गे को सेठ इतना प्यार क्यो करता है ? तोता पालना तो ठीक, पर मुर्गे तो डोम पाला करते हैं। सेठानी भी इसे वहुत प्यार करती है। कठ सेठ कहा करता था कि यह मुर्गा असाधारण है। आखिर इसमे ऐसी क्या खास वात है ?"

काफी देर विचार करने के वाद भूदेव नैमित्तिक ने वताया—

"वस्तुत' यह मुर्गा असाधारण है। जो इसकी शिखा यानी चूड को खायेगा, वह सात दिन मे निश्चित ही राजा वनेगा। मेरी वात अन्यथा नही हो सकती।"

"अरे ऐसी वात !" तापस ने आश्चर्य से कहा—"तो वह राजा वन जाएगा ?"

"एक ही वात दो तरह से है।" भूदेव ज्योतिषी ने कहा—"जो राजा वनेगा, वह इसके चूड को अवश्य खायेगा अथवा जो इसके चूड को खायेगा, वह राजा अवश्य वनेगा। दोनो कथनो का एक ही अर्थ है। जैसा ठीक समझो करो।"

इतने मे सेठानी भद्रा भोजन के दो थाल लेकर आ गई। तापस और ज्योतिषी दोनो ने भोजन किया। दूसरे दिन भूदेव ने कठ के घर से प्रस्थान कर दिया।

तापस सोचने लगा—'जो राजा वनेगा, वह इसके चूड को अवश्य खायेगा अथवा जो इसके चूड को खायेगा, वह राजा अवश्य वनेगा। तो यह तो एक ही वात है। मैं राजा वनूगा, इसलिए इसके चूड को खाऊँगा। मुझे

कौन रोकेगा ? मैं इसके चूड को निश्चय ही खाऊँगा, इसलिए मैं राजा बनूगा ।

'मैं बनूगा राजा और सेठानी भद्रा रानी बनेगी। पर मेरे तो और भी रानियाँ हो जाएँगी। फिर तो मेरे ठाठ हो जाएँगे। मैं अपने को तापस राजा प्रसिद्ध करूँगा। फिर मुर्गे के चूड वाली बात थोडे ही कहनी है ? फिर तो मैं कहूँगा कि तपस्या के बल पर मुझे अनचाहे ही राजपाट मिल गया।'

सेठानी आई। उसने तापस का हाथ पकडा तो बेचारे का विचार स्वप्न टूट गया। वह कुछ पूछती, उससे पहले ही तापस बोला—

"आज मेरे लिए मन-पसन्द भोजन बनाओ।"

"वह तो रोज ही बनाती हूँ।" सेठानी बोली—"फिर आज क्यो नही बनाऊँगी ?"

"तो बनाओ।" तापस बोला—"अपने इस मुर्गे का मास बनाओ।"

सेठानी बोली—

"मुर्गे राजगृह मे और भी मिल जाएँगे। यह मुर्गा तो उन्हे बहुत प्रिय है। आते ही पूछेगे तो क्या जवाब दूगी ? इस मुर्गे का वध मैं नही कर सकती।"

"तो क्या अब तक नाटक करती रही ?" तापस बोला—"ऐसी झूठी स्त्री के पास मैं एक क्षण भी नही रुक सकता। तू तो मेरे साथ भागने की कह रही थी। आज-पति इतना प्यारा हो गया कि उसका यह मुर्गा भी नही मार सकती। मैं अब जाता हूँ।"

भद्रा ने तापस के पैर पकड लिये। खुशामद के स्वर मे वोली—

"मुझे क्या पता था कि आप तनिक-सी वात पर नाराज हो जाएँगे ? आपको यही मुर्गा पसन्द है तो मै इसी का मास वनाऊँगी।"

भद्रा ने मुर्गा मरवाया और उसका माँस राध कर रख दिया। फिर तापस से कहा—

"मास तैयार है। आप तीन दिन तक खा सकते है। एक मुर्गे का माँस इतना पर्याप्त हो गया है कि आप अकेले एक वार मे नही खा सकते।"

"मैं तो वहुत थोडा खाऊँगा।" तापस ने कहा—"वाकी तुम लोग वाँट लेना। पर आज नदी स्नान करके देवदर्शन करूँगा, तव विधि-विधान से खाऊँगा।"

"क्यो आज ऐसी क्या वात है ?" सेठानी ने पूछा—"जो देवदर्शन करके तव मुर्गे का मास खाओगे ?"

तापस वोला—

"भद्रा रानी ! तापस राजा की वाते वडी रहस्यमय होती है। सात दिन वाद तुम देखना, क्या से क्या हो जाएगा। ... अच्छा तो मैं अव जाता हूँ।"

मनमोदक खाते हुए और तापस राजा के रूप मे प्रसिद्ध होने के सपने देखते हुए तापस नदी स्नान करने चला गया।

उसके जाते ही सागरदत्त विद्यालय से आया और माँ से वोला—

"माँ आज तो वडे जोरो की भूख लगी है। कुछ खाने को दो।"

"अभी तो आया है और अभी खाना ?" भद्रा वोली—"कुछ देर वैठ तो सही।"

"नही माँ, आज तो मुझे वहुत जल्दी जाना है।" सागरदत्त ने कहा—"गुरुजी ने आज माँ की ममता का पाठ पढाया था। मुझे तुम्हारी याद आगई सो चला आया। आज हमारे यहाँ प्रहेलिका प्रतियोगिता है। अपनी टोली का सचालन मुझे ही करना है। तुम्हारे हाथ का कुछ खाकर सचालन करूँगा तो हमारी टोली की ही जीत होगी।"

सेठानी ने सागरदत्त के सिर पर हाथ फेरा। प्यार से बोली—

"अच्छा जा ! उधर मुर्गे का मास रखा है। थोडा सा अलग लेकर खा लेना। बाकी तपसी जी के लिए छोड देना।"

सागरदत्त ने मास लिया। सबसे पहले उसे चूड ही मिला। उसने वही लेकर खा लिया। थोडा-सा और भी खाया। 'जो राजा वनेगा, वही चूड खायेगा।' भूदेव नैमित्तिक की यही बात सही निकली। जिसे राजा वनना नही है, वह खा ही नही सकता। वह तो छोडकर चला ही गया। जिसे वनना है, वह अकस्मात ही आगया। धन्य लीला—भाग्य लीला !

"मेरा रथ तैयार खडा है।" सागरदत्त ने कहा—"तो मैं अब जाता हूँ।"

मानो भावी राजा को चूड खाने के लिए ही भावी ने सागरदत्त को भेजा था। थोडी ही देर वाद तापस भी आ गया। उसके मस्तक पर तिलक था। हाथ मे फूल, मुख पर प्रसन्नता और मन मे राजा वनने की महत्त्वाकाक्षा।

"अव लाओ मास।" स्वय ही पटरे पर वैठते हुए तापस ने कहा—"सात दिन वाद तुम देखना मुझे।"

तापस मास खाने वैठा। मॉस को चम्मच से कुरेदा। मुर्गे की दोनो टाँगे मिल गई। मॉस के टुकडे भी मिले, पर चूड नही मिला। तापस घवराया और आक्रोश मे वोला—

"भद्रा! इधर तो आ।"

भद्रा आई। सहमकर वोली—

"क्या हुआ?"

"इसमे चूड तो है ही नही। अरे चूड नही जानती। मुर्गे का मुकुट—उसकी लाल शिखा! कहाँ गया चूड?"

भद्रा वोली—

"चूड-वूड की मैं क्या जानू। सागर आया था। थोडा-सा मास वही खागया है।"

तापस ने माथा पीटा—

"जो चूड खायेगा, वही राजा वनेगा। तो अव सागरदत्त? नही-नही।

"भद्रा! जल्दी जा। सागरदत्त को वन मे ले जाकर उसका वध कर दे। उसके पेट से चूड निकालकर मुझे दे।"

भद्रा काँप गई। उसने अपने दोनो कानो पर हाथ रख लिये। बोली वह—

"तुम मेरा वध कर दो। पर मैं पुत्र का वध कैसे करूँगी। यह आदेश मुझे मत दो।"

"यह काम तुझे करना ही है।" तापस उठकर खडा हो गया—"अब तुझे मेरी जरूरत नही है क्या ? याद रख, यदि तू सागर का वध करके चूड नही लाएगी तो मैं तेरी नाक काटकर चला जाऊँगा। तू किसी को मुँह दिखाने के काबिल नही रहेगी।"

भद्रा सोचने लगी। गोमती धाय सब सुन रही थी। उसने सोचा—'काम की दासी यह दुष्टा पुत्र का वध करने को तैयार हो जायेगी। मैं सागर को बचाऊँगी।'

यह सोच गोमती धाय चुपचाप खिसक गई। सीधी विद्यालय पहुँची। सागरदत्त का हाथ पकडा और भाग छूटी।

इधर भद्रा को मौन देख तापस ने उससे कहा—

"भद्रा ! मैं और तुम जीवित है तो तेरे बहुतेरे पुत्र हो जाएँगे। तू सागरदत्त के उदर से चूड ले आ। उसे खाकर फिर यहाँ रहना किसे है ? अरी पगली, मै तापस राजा बनूगा। तू मेरी रानी बनेगी। रानी और सेठानी का अन्तर तो तू जानती ही है। वरना शुक जैसी अपनी सुन्दर नासिका देख ले। यह फिर नही रहेगी। मुझसे प्रेम करती है तो अपने प्रेम का परिचय दे।"

भद्रा तैयार हो गई। काम की महिमा ऐसी कि माँ पुत्र का वध करने को चल दी।

इधर गोमती धाय सागरदत्त को लिए बढी चली जा रही थी। छह दिन और छह रात की अनवरत यात्रा के वाद दोनो चम्पानगरी के निकट उद्यान में पहुँच गये। उद्यान मे ठहरने के वाद सागरदत्त ने गोमती से पूछा—

"धाय माँ ! रास्ते मे तुमने इतना ही कहा था कि मेरे प्राणो पर सकट है। अव तो वताओ कि मुझ पर कैसा सकट था।"

"कुछ मत पूछो बेटा।" गोमती धाय ने कहा—"सक्षेप मे वताती हूँ। तुम्हारी माँ तापस के वश मे होकर घर लुटा रही है। खुद भी लुट चुकी है। उसी की खातिर वह तुम्हे मारने विद्यालय आई होगी।

"वत्स अव हम दूसरे राज्य मे है। मैं किसी के घर मजदूरी करूँगी। तुम्हारे ऊपर आँच नही आने दूँगी।"

"पुत्र के होते धाय माँ तुम मजदूरी करोगी ?" सागरदत्त ने कहा—"मै सोलह वर्ष का हो गया। आठ वर्ष मे मै काफी पढ भी लिया। मैं दो पेट के लिए तो कमा ही लूगा। अव मैं वैसा सागर नही रहा कि तुम मुझे गोद मे लिये-लिये फिरो।"

गोमती ने सागरदत्त का माथा चूम लिया और दोनो एक पेड के नीचे ही लेट गये। यह रात छठे दिन की अन्तिम रात थी। अगला प्रभात सातवे दिन का प्रभात था।

□ □ □

चम्पापुरी के राजा अरिसूदन निस्सतान मरे थे।

सगे-सम्वन्धियो मे भी कोई ऐसा नहीं था, जो उनका उत्तराधिकारी बनकर चम्पापुरी के राज-सिंहासन पर बैठता। सवा महीने तक का शासन मत्रियो ने चलाया। उसके वाद राज-परिषद के लोग एकत्र हुए। महामत्री ने सवसे कहा—

"उत्तराधिकारी के अभाव में कल हमे उसी प्रथा को दुहराना है, जो हमारे देश मे प्रचलित है। कल के दिन पच दिव्य ही इसका निर्णय करेगे कि चम्पापुरी का भाग्य विधाता कौन वनेगा।"

गृह सचिव ने समर्थन के स्वर मे कहा—

"दैव का भेजा हुआ ही राजा वनना है। दैव जिसे राजा वनाकर भेजेगा, उसी को पच दिव्य राजा वनायेगे।"

अगले दिन पच दिव्य सजाये गये। पट्टहस्ती सजाया। घोडा सजा। छत्र, चँवर और कलश—ये इन दोनो पर रखे गये। यो ये पच दिव्य हुए। एक बडे जुलूस के साथ पच दिव्य चले। साथ मे सभी मत्री आदि थे। दोपहर तक पच दिव्य चम्पापुरी पुरी मे घूमे, पर कोई भाग्यशाली पुरुष नही मिला।

दोपहर वाद जुलूस नगरी से बाहर उद्यान मे आया। पचदिव्य स्वत ही सागरदत्त की ओर चले गये। उसे देख घोडे ने हेषारव किया। हाथी ने चिघाड मारकर अपनी स्वीकृति दी और सूड से उठाकर कलश का जल सागरदत्त पर उडेलकर उसका अभिषेक किया। फिर पट्टहस्ती ने पँचरगी फूलो की माला सागरदत्त के कठ

में डाल दी। दिव्य छत्र स्वत ही उसके ऊपर तन गया। चँवर भी अपने आप डुलने लगा।

पच दिव्यो ने सागरदत्त को चम्पापुरी का राजा मनोनीत कर दिया तो जन समूह जय-जयकार करने लगा—

"चम्पापुरी के राजा की...."

"जय।"

फिर महामत्री ने करवद्ध होकर कहा—

"आप हमारे राजा है। चलकर चम्पापुरी को सनाथ कीजिए। आपकी प्रतीक्षा मे ही राज-सिहासन सूना पड़ा था।"

सागरदत्त की सवारी नगरी मे घूमी। सातवे दिन वह राजा वन गया। विधि-विधान से उसका राज्याभिपेक हुआ। गोमती राजमाता वनी। राज्य-भर मे चम्पानरेश सागरदत्त की दुहाई फिरी। पर राजा होने के वाद सागरदत्त ने अपना नाम वदल दिया। उसे धात्री गोमती लाई थी, इसलिए उसने स्वत ही अपना नाम धात्रीवाहन रख लिया। सागरदत्त ने गोमती से कहा भी—

"धाय माँ! मेरा यह नया नाम धाय माँ के ममता भरे प्रेम की याद दिलाता रहेगा। तुमने मुझे दूसरा जन्म दिया है। मैं तो यही कहूँगा कि श्रेष्ठिपुत्र सागरदत्त ने मरने के वाद राजा धात्रीवाहन के रूप मे नया जन्म पाया है।"

"नया नाम वैसे भी ठीक है।" गोमती धाय ने कहा—"धात्रीवाहन राजा का यश दिग्दिगन्त मे फैले तो कोई बात नही। पर राजा सागरदत्त के नाम से तुम प्रसिद्धि पाते तो तापस कुछ षड्यन्त्र अवश्य रचता।"

"राजगृह की बाते भूल जाओ माँ।" राजा धात्री-वाहन ने कहा—"अब हमारा नया जीवन शुरू होगा।"

राजा धात्रीवाहन के सुशासन मे चम्पा की प्रजा सुख से रहने लगी। समस्त प्रजा अपने पुराने राजा को भूल-सी गई, क्योकि धात्रीवाहन न्यायप्रिय, प्रतापी और प्रजावत्सल राजा था। उसके शासन मे धर्म की रक्षा थी।

□ □ □

यवन देश की सफल यात्रा करके श्रेष्ठी कठ राजगृह लौटा। माल के छकडे उसने सीधे गोदामो पर पहुँचा दिये। फिर घर पहुँचा तो घर की दशा बडी शोचनीय थी। घर का सब काम भद्रा ही करती थी। सभी दासियाँ और सेवक जा चुके थे। बस हवेली मात्र रह गई थी और सब लुट चुका था। भद्रा ने कृत्रिम स्नेह के साथ कठ का स्वागत तो किया, पर कठ को उसके स्वागत मे वह बात नजर नही आई, जिसकी उसे आशा थी। कठ ने पूछा—

"प्रिये! घर ऐसा क्यो हो गया? कहाँ गये सब नौकर? तुम्हारे रहते लक्ष्मी किनारा कैसे कर गई?"

अब क्या कहे भद्रा? उसके पास कहने को कुछ नही

था। कठ की दृष्टि तोते पर पडी तो उसने तोते से कहा—

"हे शुक ! तुमसे क्या छिपा है ? तुम्ही मुझे सब कुछ बता सकते हो ?"

शुक बोला—

"पहले मुझे मुक्त करो। मेरे-तुम्हारे मिलन का आज अन्तिम दिन है। सब कुछ बताने के बाद ही मै यहाँ से जाऊँगा।"

कठ ने पिंजडे की खिडकी खोली तो तोता उडकर आँगन मे खडे आम्र वृक्ष पर जा बैठा। फिर बोला—

"तुम्हारा गृहस्थ-जीवन तो अब नरक हो चुका। भद्रा इस तापस के वासना पक मे फँसकर अपना स्त्रीत्व नष्ट कर चुकी है। इसी ने पानी की तरह पैसा बहाया है। तुम्हारे धन पर तापस ने खूब गुलछर्रें उडाये है। वेतन न मिलने के कारण सब दास-दासियाँ किनारा कर गये। कुछ दिन तक तुम न आते तो ये दोनो मिलकर इस हवेली को बेच देते और भाग जाते। . अब तुम जो चाहो सो इन्हे दण्ड दो। मै चला ।"

तोता चला गया और कठ एकान्त मे जाकर चिन्तन करने लगा। चिन्तन करते-करते कठ के मन मे ससार के प्रति वैराग्य भर गया—'कोई किसी का नही होता। सब रिश्ते छल से भरे है। ससार बडा ही नाटकीय है। स्वप्न देखकर मनुष्य इतना तो जान जाता है कि मैंने जो कुछ देखा वह सब झूठा था। पर ससार को मनुष्य अन्त तक सत्य ही समझता रहता है। पर मुझे तो सब कुछ दीख गया कि ससार का रूप 'मेरा' बिल्कुल असत्य

है। मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, मेरा भवन—कौन है मेरा ? कोई नही। भद्रा मेरी थी ही कब, जो मै दु ख करूँ ? मेरा शरीर भी नही। अव तो 'मेरा' के बधन को तोड महाव्रतो का पालन करूँगा, ताकि आत्मा का बोझ उतरे।'

इधर कठ चिन्तन कर रहा था, उधर भद्रा भय से काँप रही थी। उसने तापस से कहा—

"अपनी व्यवस्था हम पहले ही नही कर पाये। अव जाने वह मुझे क्या दण्ड देगा ? गुमसुम गया है। कुछ करेगा अवश्य।"

"तो भाग चलो। अब क्या सोचती हो ?" तापस ने कहा—"यहाँ तो अव दाल गलेगी नही।"

ये दोनो वाते कर ही रहे थे कि एक पडोसिन ने भद्रा को सदेश दिया—

"सेठानी ! तुम्हारे पति कठ तो मुनि वन गये। उन्होने आचार्य गुणसुन्दर से दीक्षा ले ली।"

इस सवाद से भद्रा खुश हुई। तापस भी खुश हुआ। पर नगर मे चर्चा फैली—'यवन देश से आते ही कठ मुनि क्यो वन गया ?' कठ के पुराने दास-दासियो को पता चला कि हमारा स्वामी कठ श्रमण वन गया तो उन्होने भद्रा के पापाचार की कहानी सवसे कह दी। अव तो भद्रा का जीना मुश्किल हो गया। लोग धिक्कारने लगे। भद्रा राजगृह मे मुँह दिखाने के योग्य नही रही। वचे-खुचे धन की पोटली वाँधी और रात को तापस तथा

भद्रा राजगृह छोडकर चलते बने। अव उनके जीवन मे भटकना ही-भटकना रह गया था।

भटकते-भटकते दोनो चम्पापुरी पहुँच गये। भद्रा ने सुझाव दिया—

"यह नगरी राजगृह से छोटी तो है, पर सुन्दर है। यही रहे।"

"पर रहेगे कहाँ ?" तापस ने कहा—"इतना धन भी तो नही है कि एक छोटा-सा घर ही खरीद लेते।"

"अव भी घर के सपने देखते हो ?" भद्रा कुछ क्रोध मे वोली—"तुमने सव पैसा पानी की तरह वहा दिया। अव तो गुजर की वात करो।"

"तेरे पीछे मैंने अपना जीवन नष्ट कर दिया, सो कुछ नही कहेगी।" तापस विगडा—"मैंने क्या तेरे हाथ-पैर जोडे थे ? तूने ही मुझे नीचे गिराया।"

"इन वातो मे अव क्या रखा है ?" भद्रा वोली— "तुम पुरुप हो, इसलिए मुझे दवा रहे हो। पर अव तक मैने तुम्हे खिलाया, अव कुछ पुरुपार्थ करो और तुम मुझे खिलाओ।. देखो, मजदूरो की वस्ती मे एक झोपडी डाल लो। धीरे-धीरे मकान भी वना लेगे।"

तापस ने एक झोपडी वनाई। पडोसी लकडहारो से उसका परिचय भी हो गया। घर-गृहस्थी का छोटा-मोटा सामान भी खरीद लिया। तापस ने काम ढूढ लिया। पहले दिन भद्रा ने भोजन वनाया। तापस ने खाया तो वोला—

"तुम्हे नमक का कुछ भी अन्दाज नही है ? रोटियो

मे भी नमक और दाल मे भी। मुझसे तो यह खाना नही खाया जायगा।"

"ज्यादा नमक है तो थोड़ा पानी डाल लो।" भद्रा बोली—"भूल गये वह दिन, जब कहते थे कि मेरे हाथो मे जादू है। तव तो तुम्हे मेरे हाथ का वना खाना वडा स्वादिष्ट लगता था और आज नमक ज्यादा बताते हो ?"

"वात-वात पर लडेगी तो गाडी कैसे चलेगी भद्रा ?" तापस वोला—"नमक ज्यादा है तो ज्यादा बता दिया।"

भद्रा उठी और एक पात्र मे रखा मठा तापस के सामने रख दिया। वोली—

"मठे से खाओ, नमक कम हो जाएगा।"

"अरे, यह मठा तुम कहाँ से ले आई ?" तापस ने कहा—"मठा क्या है भूलोक का अमृत है।"

भद्रा वोली—

"भाग्य की विडम्वना वडी विचित्र है। मैंने भी एक सेठानी के यहाँ काम लगा लिया है। सबेरे से दोपहर तक का काम है। उसी ने यह मठा दिया था। .. पर भाग्य की विडम्वना यह है कि उसका नाम भी भद्रा सेठानी है। उसने जव मेरा नाम पूछा तो मैंने भद्रा वताया और यह भी कहा कि मुसीवत के मारे हम लोग यहाँ आकर बस गये है। इस पर वह कहने लगी—यह सव भाग्य की ही तो वात है कि तू भी भद्रा और मैं भी भद्रा।

"जो वात वह नही कह पाई, वह मैंने कही कि एक भद्रा स्वामिनी है और एक सेविका, जवकि दोनो को

राशि एक ही है। इस पर सेठानी ने कहा—राशि के चक्कर मे पडकर क्या लोगी भद्रा राम और रावण की भी तो एक ही राशि थी।"

"यह तूने अच्छा किया भद्रा।" तापस ने कहा—"अकेले तेरा मन भी नही लगता। तेरा वक्त कट जाया करेगा।.. .पर तू मायूस मत हो। एक दिन मैं तुझे पहले की तरह भद्रा सेठानी बनाकर छोडूगा। देखना तू यह झौपडी भवन मे बदल जाएगी।"

तापस की बात सुन भद्रा मुस्कराई। उसकी मुस्कराहट मे तापस ने अपनी उपेक्षा देखी तो पूछा—

"क्यो ? क्यो मुस्कराई तू ? क्या यह सब नही हो सकता ?"

"आपकी बात पर मुझे एक घटना याद आ गई, इसलिए हँसी भी आ गई। बुरा न मानो तो सुना दूँ।"

"हाँ-हाँ, सुना दे।" तापस बोला—"बुरा क्यो मानूगा ? जब तेरी गालियाँ तक सह लेता हूँ तो बात का बुरा क्यो मानूँगा ?"

भद्रा सुनाने लगी। एक निर्धन व्यक्ति कल्पना किया करता था कि किसी दिन मेरे घर मे धन आयेगा तो मैं गाँव के लोगो को भोज दूँगा। आस-पास के ब्राह्मण भी बुलाऊँगा सब मेरी प्रशसा करेगे कि बडी अच्छी दावत दी।

एक दिन निर्धन व्यक्ति ने सपना देखा कि मेरे कोठे मे लड्डू, बालूसाई आदि मिठाइयो के ढेर लगे है। टोकरो

मे पूडिया भी भरी पडी है। लम्बा-चौडा कोठा मिठाइयो से भरा है। बस, निर्धन की आँख खुली तो अपनी पत्नी को जगाकर बोला—

"जल्दी उठ! और काम बाद मे करना, पहले कोठे का ताला लगा। नही तो सब चला जाएगा।"

"क्या चला जाएगा?" घरवाली ने कहा—"कोठे मे क्या धरा है जो ताला लगाऊँ?"

"बहस मत कर।" निर्धन ने कहा—"पहले अँधेरे-अँधेरे कोठे का ताला लगा दे।"

घरवाली ने ताला लगा दिया। फिर पति के पास आकर बैठ गई और बोली—

"अब क्या आज्ञा है? कोठे का ताला तो लगा दिया।"

निर्धन बोला—

"रात कितनी होगी?"

"ज्यादा-से-ज्यादा तीन घडी।" घरवाली ने कहा—"प्रभात तो हो ही गया। थोडा अँधेरा बाकी है।"

निर्धन व्यक्ति ने कहा—

"सबेरा होते ही तू गाँव वालो को भोज का निमन्त्रण दे आना। मैं पत्तले और सकोरे लेने जाऊँगा।"

"मगर खिलाओगे क्या?" घरवाली बोली—"आज तुम्हे हो क्या गया है?"

"फिर वही बहस!" निर्धन ने कहा—"मैं जैसे कहूँ,

वैसे कर। भण्डार भरा है। किसी चीज की कमी नही है।"

घरवाली को पति की वात माननी पडी। ब्राह्मणो को न्योता दे दिया गया। दोपहर को सब इकठ्ठे हुए। सव के सामने पत्तले परोस दी गई। सकोरे परोसे गए। कुल्लडो मे पानी परोस दिया। अब निर्धन व्यक्ति ने कोठा खोला। पर वहाँ क्या था ? कुछ भी नही। सपने के भरे भण्डार जागकर किसने देखे है ? अब क्या हो ? पत्नी वोली—

"यह क्या किया तुमने ? अब कैसे सम्हालोगे ?"

निर्धन बोला—

"चतुर प्रिये ! विगडी वात को तू ही बना। मैं धोखा खा गया। सपने मे तो सब कुछ था।"

सकटकाल मे भी घरवाली को हँसी आ गई। विगडी वात वनाने के लिए वह गोद के वच्चे को लेकर वहाँ गई, जहाँ भूखे वामन खाली पत्तलो को रखे बैठे थे। घरवाली ने एक बूढे ब्राह्मण के चरणो मे अपना वच्चा लिटाया और वोली—

"ये तेरे वावा हैं। इनका आशीर्वाद ले।"

फिर इसी क्रम से वच्चे को लिटाती-घुमाती जाती और क्रम-क्रम से कहती—

"ये तेरे ताऊ हैं। और ये चाचा लगते है।....ये वडे भैया है। आज सब का आशीर्वाद ले।"

भूखे ब्राह्मणो मे से एक पर न रहा गया वह खीझकर बोला—

"कब तक आशीर्वाद लेगी ? भूख के मारे दम निकला जा रहा है। जल्दी से साग-पूडी, रायता, खीर-खुरमा, सौंठ-चटनी, पापड-कचौडी, दही-बूरा—जो कुछ हो जल्दी ला। आशीर्वाद भूखे का नही फलता।"

निर्धन की घरवाली ने सबके हाथ जोडे और बोली—

"इस बालक के जन्म पर मैंने 'फोक बामन' बोले थे। अत मैं तो पानी ही पिला सकती हूँ।"

झल्लाते हुए सब उठे और गालियाँ देते हुए अपने-अपने घर गये।

यह दृष्टान्त सुनाते हुए भद्रा ने तापस से कहा—

"पहले की तरह मुझे सेठानी बनाने और झौंपडी को भवन मे बदलने के ऐसे ही सपने तुम देख रहे हो, जैसे निर्धन व्यक्ति ने देखे थे।"

तापस हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया और बोला—

"तू ऐसे ही किस्से सुनाती रही तो मुझे यह मजूरी भी बडी अच्छी लगेगी। सब दिन यो ही कट जाएँगे।"

भद्रा और तापस के दिन चम्पापुरी मे कट रहे थे।

□

तप की महिमा अनन्त है। इसका गुणगान करने वाले तो यहाँ तक कहते है कि—तप अधार सब सृष्टि भवानी। अर्थात् यह सृष्टि तप के आधार पर ही टिकी है। इतना तो निश्चित ही है कि तप सुखप्रद है और दुख-दोष का नाश करने वाला है। दु.ख क्या है ? दोष क्या है ? कर्म का दुस्सह बध दोष है और उसका भोग दु ख है। तप के बल से मनुष्य कर्मक्षय करके सदा के लिए बधनमुक्त हो जाता है।

तप क्या है ? धर्म का एक विशिष्ट अग तप है। धर्मभाव के बिना किया गया तप केवल कायाकष्ट होता है, तप नही। तप एक साधन है, एक मार्ग है और इसकी सिद्धि अथवा लक्ष्य है मोक्ष पद या शिवलोक की प्राप्ति। इसी के लिए मुनि जन अपने तन को कसते है। मुनि कठ ने भी तप किया और वे तपोधारी श्रमण हो गए।

मुनि कठ को तप प्रभाव से अनेक लब्धियाँ सहज ही प्राप्त हो गईं। तेजोलेश्या आदि लब्धियो के बल पर वे ससार को उलट-पलट कर सकते थे। पर वे कभी इन लब्धियो मे अटके नही। इनकी ओर ध्यान भी नही दिया। वे समताभाव मे निमग्न रहते हुए एकाकी

विहार करने लगे । ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मुनिवर कठ जगत का कल्याण कर रहे थे । भटके लोगो को राह दिखाना कठ जैसे निर्ग्रन्थ मुनियो का सहज स्वभाव होता है ।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मुनिवर कठ चम्पापुरी मे आ गये । तीसरे प्रहर वे नगरी मे गोचरी के लिए घूम रहे थे कि भद्रा की दृष्टि उन पर पडी । देखते ही पहचान गई । उसने सोचा—'यह मेरा जीना दूभर कर देगा । चम्पापुरी मे जैसे-तैसे गृहस्थी जमी है और यह मेरा भण्डाफोड करके सब चौपट कर देगा । अरे यह तो इधर ही आ रहा है । कहाँ भागूं ? '

इतनी ही देर मे मुनि कठ भद्रा की झोपडी के सामने आकर खडे हो गये । भद्रा ने उन्हे आहार वहराया और चुपके-से अपने हाथ मे से सोने की अँगूठी निकालकर आहार के साथ ही रख दी । मुनि जब चलने लगे तो भद्रा ने हल्ला मचाया—

"चोर-चोर-चोर ! पकडो इसे । मेरी सोने की अँगूठी लिये कैसा लपकते कदमो से जा रहा है ।"

हल्ला सुनते ही लोग इकट्ठे हो गये । भीड मे धर्म-द्वेषी लोग भी थे । मिथ्यावादियो की कमी कही नही होती । कुछो ने मुनि के पात्र देखे तो सचमुच भद्रा की अँगूठी निकल आई । अब तो कुछ लोग मुनि को पीटने लगे । यदि चाहते तो मुनि सबको भस्म कर सकते थे । पर उनके लिए तो निन्दा-स्तुति, शत्रु-मित्र सब बराबर थे । समताभावी मुनि गालियाँ सुनते रहे और पिटते भी

रहे। उनकी धर्मदृष्टि मे तो यह उनके कर्मों का क्षय हो रहा था।

राजभवन की छत पर से राजमाता गोमती ने कठ मुनि को दूर से ही देखा तो उन्हे पहचान लिया। वह दौडी-दौडी राजसभा पहुँची और राजा धात्रीवाहन से वोली—

"अनर्थ हो रहा है। महामुनि कठ, जो ससारी नाते से तुम्हारे पिता है, उनको पीटा जा रहा है।"

राजा धात्रीवाहन ज्यो का त्यो उठ गया। दौडा-दौडा मुनि की ओर भागा। पीछे-पीछे राजसेवक और मत्री आदि भी गये। गोमती भी गई। राजा को आया देख काई-सी फट गई। राजाज्ञा से तुरन्त ही धूर्तो को पकड लिया गया। धात्रीवाहन मुनि के चरणो मे गिर पडा और वोला—

"क्षमा करे मुनिदेव! मेरे राज्य मे आप पर यह उपसर्ग हुआ।"

"क्षमा किस वात की?" मुनि वोले—"ये सव तो मेरे उपकारी है। तुम सवको छोड दो। हर जीव अपने किये का फल ही भोगता है।"

राजा ने मुनि के कहने से सवको मुक्त करा दिया। फिर अपनी माँ भद्रा को देखा। गोमती उसे सव कुछ वता चुकी थी। दूसरी ओर मुँह फेरकर राजा ने अपने अमात्य से कहा—

"यह स्त्री और इसका पति तापस चम्पापुरी मे न रहने पाये।"

राजाज्ञा का पालन हुआ। भद्रा और तापस को देश-निकाला मिला। राजा धात्रीवाहन सम्मान के साथ मुनि को अपने साथ ले गया। राजोद्यान मे उनकी व्यवस्था की और विनती की—

"प्रभो! इस वार का चातुर्मास आप चम्पापुरी मे ही बिताये। चम्पापुरी सनाथ हो जाएगी।"

मुनि कठ नित्य देशना देते। अपार भीड उनकी देशना सुनने जाती। राजा धात्रीवाहन और गोमती नित्य जाते। राजा ने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये और सम्यक्त्व धारण किया। मुनि की देशना के प्रभाव से अनेक लोगो ने श्रावकव्रत ग्रहण किये।

धर्मप्रभाव के कारण राजा धात्रीवाहन ने अमारि-पटह की घोषणा कराई। सर्वत्र आखेट का निषेध हो गया। मछुए अब मछली नही पकड सकते थे। वन के हिरन आदि अब निश्चिन्त घूमते थे। राज्य की ओर से अनेक दानशालाएँ खोल दी गई। इस धर्मजागृति से धर्मनिष्ठो मे आनन्द की लहर फैली तो धर्मद्वेषी और मिथ्यावादियो मे धर्म के प्रति सहज ईर्ष्या जाग गई।

धर्मद्वेषी खलो का यह सहज स्वभाव होता है कि वे—'जे विनु काज दाहिनेहु वाएँ।' ये दुष्ट अकारण ही सतो और धर्मनिष्ठो को कष्ट दिया करते है। एक दिन ऐसे ही धूर्तों ने अपनी गुप्त सभा की और कहा—

"इस मुनि के आने से नगरी मे धर्म की महामारी फैल गई है। राजा धर्म-धर्म चिल्लाता है। प्रजा उसका अनुसरण करती है। हमारे सब धन्धे चौपट हो गये।

जुआ खेलते लोग डरते है कि पाप लगेगा। राजा का डर अलग है। जो कि धर्म को नही भी मानते वे राजा से डरते है। मास कही ढूढे नही मिलता।"

"इस दुखडे को रोने से क्या लाभ ?" एक वधिक ने कहा—"हमे तो इस वात पर विचार करना है कि धर्म की इस वाढ को कैसे रोका जाए।"

"इसका उपाय मैं सोचकर आया हूँ।" एक काने जुआरी ने कहा—"धम्मा नाम की यह चाडालिनी हमारा काम वनायेगी।"

धम्मा खडी हुई। वह गर्भवती थी। रग काला, वाल छोटे-छोटे, आँखे गोल और मुख पर वेशर्मी की छाया। धम्मा ने काने जुआरी से कहा—

"पूरी पाँच सौ लूगी।"

काना वोला—

"हाँ-हाँ, पाँच सौ ही मिलेगी। पाँच सौ मुद्राएँ पहले और काम होने पर वाद मे। ठीक उस दिन जाना, जिस दिन कठ मुनि चातुर्मास समाप्ति की अतिम देशना दे।"

चाण्डालिनी धम्मा को जो काम सौपा गया था, वह सवको पसन्द आया। तत्काल पाँच सौ मुद्राएँ इकट्ठी की गई। बुरे कामो का चन्दा वडी जल्दी होता है। पाँच सौ मुद्राएँ लेकर धम्मा अपने घर गई। दुष्टो की सभा विसर्जित हो गई।

मुनि कठ चातुर्मास समाप्त कर चुके थे। उन्होंने राजा धात्रीवाहन से कहा—

"राजन् ! आज की देशना देने के वाद हम अन्यत्र विहार करेंगे ।"

कुछ उदास होकर राजा ने कहा—

"आपको रोका तो नही जा सकता । पर विदा करते दिल टूटता है ।"

"यह तुम्हारा मोह है राजन् !" मुनि ने कहा—"यह मोह ही सव दु खो का कारण है । स्थान-मोह न हो, इसलिए तो श्रमण-सन्त चातुर्मास के अतिरिक्त कभी भी एक स्थान पर ज्यादा दिन नही ठहरते ।"

इसके वाद राजा धात्रीवाहन ने मुनिश्री की अन्तिम देशना की घोषणा कराई । सव बाग मे इकट्ठे हुए । राजा-प्रजा मुनि कठ की देशना सुन रहे थे । मुनि कह रहे थे—

"मोह को दु खो का कारण कहा । यह मोह क्या है ? मोह अधकार है । अधेरे मे कुछ का कुछ लगता है । रस्सी साँप दिखाई देती है । हमारे जीवन मे इसको अज्ञान कह सकते है । तो अज्ञान, मोह अथवा अधकार के कारण जो अपना नही, वह अपना लगता है । अपना लगना ही ससार है । तन मेरा है, भवन मेरा है, मित्र मेरा है, परिवार मेरा है । इसी तरह माता-पिता, भाई, पुत्र और पत्नी मेरे है । इन दसो मे ससार सिमट गया है । झूठा ससार सत्य लगता है, इसी मोह के कारण ।

"अज्ञान के कारण मनुष्य धन मे सुख देखता है । पर धनी भी रोते हैं । उनकी छाती पर भी चिन्ता का वोझ लदा रहता है । अज्ञान के कारण वे यह नही

जानते कि ज्यो-ज्यो धन वढेगा चिन्ता भी वढेगी। धन का उपयोग करो अवश्य, पर उसे वटोरो नही। वाँटो। गरीवो मे वाँटो, धनहीनो मे वाँटो।

"तो यह मोह कैसे मिटेगा ? शिक्षा से ? अध्ययन से ? नही। वाहरी शिक्षा तो ज्ञान-लाभ की वाधाओ को दूर कर सकती है, आपका अज्ञान नही मिटा सकती। तुम्हे यह स्वीकार कर लेना है कि तुम्हारी आत्मा को छोड़कर तुम्हारा और कोई शिक्षक नही है।

"भव्य जीवो ! चार महीनो मे मैंने अपने अनुभव की वाते तुमसे कही। इनसे तुम जो लाभ उठा सको अवश्य उठाना। आज हमे अन्यत्र विहार करना है।"

इतना कह मुनि कठ मौन हुए कि धम्मा चाण्डालिनी उठकर खडी हो गई। उसने वडी वेशर्मी से कहा—

"मुझे सकट मे डालकर कहाँ जाएगा पाखण्डी ! तेरे इस गर्भ का मैं क्या करूँगी ? जव तो मीठी-मीठी वातो से मेरा जीवन वर्वाद कर दिया। अव भागना चाहता है।"

मुनि शान्त रहे। इस झूठे आरोप पर भी उन्हे क्रोध नही आया। उन्होने चाण्डालिनी से कहा—

"हे भद्रे ! अनर्गल वाते क्यो कर रही हो ? एक साधु पर कीचड उछालना अच्छी वात नही है। अपने शव्द वापस लो।"

चाण्डालिनी तो धूर्तों द्वारा पढाई गई थी। वह तो विलख-विलखकर रोने लगी और रोते-रोते वोली—

"हाय ! अव झूठ वोलता है। पहले अपने इस गर्भ की व्यवस्था कर। मै तुझे जाने नही दूगी। तूने मेरा जीवन विगाड़ा है तो मैं भी तुम्हे सुख से नही वैठने दूंगी।"

अव तो सभा मे गजव का सन्नाटा था। धर्म-द्वेषी मन-ही-मन मुस्करा रहे थे। धर्मनिष्ठ मन-ही-मन चकित थे। एक ओर चाण्डालिनी का रोना और दूसरी ओर मुनि का धर्मतेज उन्हे शका मे झुला रहा था। राजा धात्रीवाहन भी चकित था। वह कभी चाण्डालिनी की ओर देखता, कभी मुनि की ओर।

मुनि ने एक वार पुन चाण्डालिनी को समझाया पर वह भला क्यो मानती ? तव मुनि कठ को क्रोध आ गया। उन्होने सोचा, 'यदि इस समय अपनी लब्धि का प्रयोग नही किया तो धर्म की अवमानना होगी। मेरे एक मौन से हजारो श्रद्धालु सम्यक् श्रद्धा से पतित हो जायेंगे, धर्मप्रेमी जिनधर्म से विमुख हो जायेगे। अतः आवेश मे मुनि कठ ने कहा—

"भद्रे ! यदि यह गर्भ मेरा ही है तो अभी सव के सामने तेरे योनिमार्ग इसका प्रसव हो। यदि तू झूठ वोलती है और यह गर्भ मेरा नही है तो अभी तेरा पेट फाडकर यह भ्रूण वाहर निकल जायेगा।"

जैसे पकी मटर की फली अपने आप फटती है, वैसे ही चाण्डालिनी का पेट फटा और सवके देखते-देखते उसका गर्भ छिटक कर गिरा। चाण्डालिनी वेहोश हो गई।

'धर्म की जय हो ! अधर्म का नाश हो !' के गगनभेदी

नारे लगे। धर्म छा गया। मिथ्यात्वियो के चेहरे काले पड गए। चाण्डालिनी भय से काँपने लगी। राजा धात्रीवाहन ने अपनी तलवार खीच ली और चाण्डालिनी से वोले—

"दुष्टे ! वता तूने मुनिराज पर झूठा आरोप क्यो लगाया। यदि सच वतायेगी तो मैं तुझे छोड दूगा वरना अभी तेरा वध कर डालता हूँ।"

चाण्डालिनी वोली—

"अन्नदाता ! अव मारे या छोडे। मुझे तो इस काने और इसके साथियो ने पाँच सौ मुद्राएँ देकर राजी किया था कि भरी सभा मे मैं यह कहूँ कि यह गर्भ मुनि का है।"

वस, राजा के तनिक सकेत पर ही पड्यन्त्रकारियो को पकड लिया गया। राजा धात्रीवाहन ने तुरन्त उनके वध की आज्ञा दी। मुनि कठ ने कहा—

"इन्हे मुक्त करो राजन् ! अज्ञानी है। ये स्वय अपने कर्मवध से दण्ड पायेगे। धर्म की जय हो गई। इनकी हार ही इनकी मृत्यु है। मरे हुओ को तुम क्या मारोगे ?"

धात्रीवाहन राजा ने सवको छोड दिया। यथासमय मुनि कठ ने चम्पापुरी से अन्यत्र विहार किया।

☐ ☐ ☐

पूरी कहानी सुनाने के वाद मुनि मुनिपति ने कुचिक सेठ से कहा—

"श्रेष्ठी ! जैसे चाण्डालिनी ने मुनि कठ को विवश

किया, वैसे ही वार-वार मिथ्यारोप लगाकर तू भी मुझे विवश कर रहा है कि मै भी कठ मुनि की तरह क्रोध करके तेरी आँखे खोलूँ।

"कुचिक ! तेरे आरोपो का मुझे तनिक भी क्षोभ नही है। पर इससे साधुता की मर्यादा नष्ट होती है। अत विवेक से काम ले और यह वात अपने मन से निकाल दे कि मैंने तेरा धन लिया है।"

कठ की कहानी सुनकर कुचिक भयभीत हो गया। धन का अपहर्त्ता कुचिक का पुत्र धनमित्र भी वही बैठा था। वह भी भीत हुआ। उसने अपने पिता को समझाया—

"पिताजी ! विचार तो करो कि ये मुनि कैसे है। ये मुनिपतिक नगर के यशस्वी राजा थे। राज्य का त्यागकर ये मुनि वने तो फिर ये आपका धन क्यो लेगे ? धन लेने वाला साधु क्या कभी लब्धियाँ प्राप्त कर सकता है ? ये तो अनेक लब्धियो के धारक है।

"हे तात ! यदि इन्हे क्रोध आ गया तो अपने लब्धि-प्रताप से ये हमे उसी तरह नष्ट कर देगे, जैसे लब्धिधारी मुनि विष्णु के कोप से नमुचि ने कष्ट पाया।"

भयभीत कुचिक वोला—

"पुत्र ! नमुचि कौन था ? उसने मुनिवर विष्णु के साथ ऐसा क्या व्यवहार किया कि वह नष्ट हो गया।

"पुत्र ! मुनिवर मुनिपति के श्रीमुख से मैंने अनेक

दृष्टान्त सुने। अव तेरे मुँह से लब्धिधारी मुनि विष्णु और नमुचि की कथा भी सुनना चाहता हूँ।"

"मुनि कठ ने तो वहुत थोडा क्रोध किया था।" कुचिक-पुत्र धनमित्र ने कहा—"मुनि विष्णुकुमार ने नमुचि पर क्रोध करके उसे तो शिक्षा दी, साथ ही धर्म की स्थापना भी की। अव पूरा दृष्टान्त ध्यान लगाकर सुनिये।" □

मुनि सुव्रत स्वामी का ज्ञान-वैराग्य और तप प्रभाव दिग्दिगन्त मे फैला था। वे श्रमण सघ के आचार्य थे। वे अपने सघ सहित जहाँ भी जाते, उनके दर्शनो को भीड उमड पडती। उनकी वाणी मे सत्य का जादू ऐसा था कि उनके समय के अनेक राजा निर्ग्रन्थधर्म के अनुयायी वने और प्रजा भी धर्मानुरागिणी बनी।

जिन दिनो आचार्य सुव्रत का धर्मप्रभाव धरा पर फैला था उन्ही दिनो उज्जयिनी मे धर्मसेन नाम का राजा राज्य करता था। राजा धर्मसेन न्यायप्रिय और प्रजावत्सल तो था ही, धर्म के प्रति भी विशेष आस्थावान था। लेकिन उसका मत्री नमुचि राजा के स्वभाव का विलोम था अर्थात् नमुचि धर्मद्वेषी, मिथ्यावादी और नास्तिक था। अपनी सूझ-बूझ, वीरता और युक्ति कौशल के कारण ही नमुचि धर्मसेन राजा का मत्री था, वरना अपनी पाप-वृत्ति के कारण वह धर्मसेन का मत्री वनने के योग्य कदापि नही था।

एक वार आचार्य सुव्रत श्रमण सघ सहित उज्जयिनी पधारे। राजा धर्मसेन सहित समस्त प्रजा मुनि की देशना सुनने राजोद्यान गई। मुनि की सारपूर्ण देशना से प्रभावित होकर अनेक जनो ने श्रावकव्रत ग्रहण किये

और अनेक प्रतिबुद्ध भी हो गये। इस धर्मप्रभाव को दुष्ट नमुचि सहन नही कर पाया। उसने खुले शब्दो मे धर्म की निन्दा की।

श्रमण सघ के एक छोटे मुनि नमुचि की अनर्गल बाते नही सुन पाये। उन्होने नमुचि के थोथे तर्कों को उसी तरह काट दिया, जैसे सूर्योदय से अधकार कट जाता है। अब तो नमुचि का मुँह फक पड गया। जनता ने उसकी हँसी उडाई। एक ने तो यहाँ तक कह दिया—

"रुई का गोला पहाड़ से टकराने चला था।"

दूसरे ने कहा—

"बालू की दीवार बैठ ही गई।"

धर्मनिष्ठ राजा धर्मसेन और धर्मपरायण प्रजा को धर्मजय से भारी सतोष हुआ, पर नमुचि अपनी पराजय से तिलमिला उठा। कहावत है कि खिसियानी बिल्ली खम्बा नोचती है। नमुचि ने सोचा कि सब तो चुपचाप मेरी बातें सुन रहे थे। इस छोटे साधु ने ही हजारो के बीच मुझे नीचा दिखाया है। आज रात को इसे ही यमलोक पहुँचाना है।

रात को जब उज्जयिनी निद्रा की गोद मे बेसुध पडी थी, तब नमुचि अपना दुष्ट इरादा पूरा करने के लिए चुपचाप उठा। उसके हाथ मे नगा खड्ग था। जब वह राजोद्यान के द्वार पर पहुँचा तो शासन-देवी ने उसे वही स्तम्भित कर दिया। सबेरे तक नमुचि खबे-सा अचल खड़ा रहा।

सबेरे उसे देखने के लिए हजारो की भीड इकट्ठी हो गई। उसके हाथ में नगा खड्ग देख सभी समझ गये कि यह दुष्ट कल की पराजय का वदला लेने के लिए छोटे मुनि को मारने आया था। अब तो उसकी वहुत निन्दा हुई—कटु निंदा। विवश नमुचि ने सोचा, 'शासनदेवी और छोटे मुनि से क्षमा माँगे विना जमे पैर उखड नही सकते।' जनता के सामने नमुचि ने शासनदेवी और लघु मुनि से क्षमा माँगी।

नमुचि मुक्त हो गया। जव वह घर लौटा, तव भी उसकी जनता ने भर्त्सना की। राजा धर्मसेन ने भी उसे बहुत फटकारा। नमुचि अव उज्जयिनी मे मुँह दिखाने के योग्य नही रहा। रात को उठकर चुपचाप उज्जयिनी से चल दिया और निश्चय किया कि किसी नये राज्य मे जाकर नये सिरे से अपना जीवन शुरू करूँगा। मेरे जीवन का उद्देश्य सुव्रत और उसके श्रमण सघ को नष्ट करना होगा।

नमुचि मत्रिकार्य की दृष्टि से योग्य था, पर स्वभाव से कुटिल और दुष्ट उसी तरह से था, जैसे जौक। जौक का एक स्वभाव तो यह होता है कि अपने आश्रयदाता पानी मे ही टेढी चलती है। दूसरा स्वभाव यह कि अच्छाई को त्याग वुराई ही को ग्रहण करती है—"रुधिर पिये पय ना पिये, लगी पयोधर जौक।" गाय के स्तन से चिपकी जौक दूध नही पीती—रक्त पीती है। जौक की तरह टेढा-कुटिल नमुचि भी अपने कुटिल इरादे पूरे करने और अपनी क्षमता का दुरुपयोग करने उज्जयिनी छोडकर

चला और हस्तिनापुर पहुँच गया। उन दिनो हस्तिनापुर मे पद्मोत्तर नामक राजा राज्य करते थे।

□ □ □

हस्तिनापुर के राजा पद्मोत्तर के दो रानियाँ थी। वडी रानी का नाम था ज्वालादेवी और छोटी का लक्ष्मी। यो तो राजा को दोनो ही प्रिय थी, पर छोटी रानी लक्ष्मी पर उनका स्नेह कुछ अधिक था। इसका एक कारण यह भी था कि वडी रानी ज्वालादेवी दो पुत्रो की माता थी और छोटी लक्ष्मी निस्सतान थी।

ज्वालादेवी और लक्ष्मी दो भिन्न सम्प्रदायो के धर्म को मानने वाली थी। ज्वालादेवी जैनधर्म की उपासिका थी और लक्ष्मी ब्रह्म उपासिका। अपने-अपने धर्म-सम्प्रदाय मे दोनो की अटूट आस्था थी।

वडी रानी ज्वालादेवी ने शुभ स्वप्न देखकर जिस पुत्र को जन्म दिया, उसका नाम विष्णुकुमार था। कालान्तर मे ज्वालादेवी ने चौदह स्वप्न देखकर एक दूसरे पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम महापद्म था। चक्रवर्ती की माता ही चौदह महास्वप्न देखकर गर्भ धारण करती है। इस दृष्टि से राजकुमार महापद्म भावी चक्रवर्ती था।

ज्येष्ठ पुत्र विष्णुकुमार और अनुज महापद्म की जोडी राम-लक्ष्मण की-सी जोडी थी। दोनो भाई अमित सौन्दर्य के धनी थे। समय पाकर दोनो ही कला निष्णात, योग्य, समर्थ और युवा हुए। अब राजा पद्मोत्तर ज्येष्ठ

पुत्र विष्णुकुमार को युवराज पद पर अभिषिक्त करना चाहते थे।

राजा पद्मोत्तर ने अपनी राज परिषद को एकत्र कर अपने मन की वात कही। सभा मे विष्णुकुमार और महापद्म—दोनो राजपुत्र भी उपस्थित थे। ज्येष्ठ राजकुमार विष्णुकुमार ने खडे होकर कहा—

"पूज्य तात और अमात्य जनो! मुझे राज्य के प्रति तनिक भी आकर्षण नही है। न मुझमे राज्य करने की क्षमता ही है। मैने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया है। अत युवराज पद मेरे अनुज महापद्म को दिया जाए।"

सवने विष्णुकुमार के निर्णय की सराहना की। तैयारियाँ हुई और यथादिन छोटे राजकुमार महापद्म को युवराज पद पर अभिपिक्त किया गया। इस अवसर पर नमुचि भी उपस्थित था। उसने अपनी पारखी आँखो से देखा कि भविष्य मे युवराज महापद्म ही काम देगा। बूढा राजा पद्मोत्तर मेरे किस काम का। अत नमुचि ने युवराज महापद्म का मन्त्रिपद प्राप्त कर लिया।

देश-देशान्तर की वातो, किस्से कहानियो और अपने अनुभव से नमुचि ने महापदम को प्रसन्न कर लिया। वह चाटुकारी करने की कला मे भी निपुण था। नमुचि का जीवन युवराज का कृपाहस्त पाकर आनन्द से वीतने लगा।

युवराज महापद्म शासन कार्य मे पिता पद्मोत्तर

का हाथ बँटाता था। नमुचि उसका दाहिना हाथ था। वह भी अपनी सूझ-बूझ से युवराज की सहायता करता था।

यो तो राजा पद्मोत्तर के राज्य मे पूरी सुख-शान्ति थी, पर कुछ दिनो से सामन्तसिह डाकू के गिरोह ने वडा आतक मचा रखा था। उसकी लूट-मार इतनी आतक-पूर्ण होती कि धन लूट के साथ जन हानि भी होती। राजा पद्मोत्तर की सुरक्षा व्यवस्था विफल हो गई। सामन्तसिह एक तरह से शासक के लिए चुनौती बन गया।

युवराज महापद्म ने सोचा, 'भविष्य मे मुझे ही हस्तिनापुर के राजसिहासन पर बैठना है। अत अपने युवराज काल मे इस सामन्तसिह का सफाया करना जरूरी है।'

जिस दिन युवराज ने सामन्तसिह के विनाश का विचार किया उसके तीसरे दिन ही सामन्तसिह ने पद्मोत्तर राजा के तीन गाँवो को वडी नृशसता से लूटा। घरो मे आग लगाई। स्त्री-वच्चो तक को मौत के घाट उतार दिया।

यह समाचार सुनते ही युवराज महापद्म का खून खौल उठा। उसने तत्काल अपनी की ओर सभा मे बीडा डालकर कहा—

"कौन है ऐसा वीर जो सामन्तसिह का सफाया करे? जो इस कार्य को करेगा, वह मुँहमाँगा पुरस्कार पायेगा।"

सभा मे सन्नाटा छा गया। किसी का साहस बीड़ा उठाने का नही हुआ। पर नमुचि ने दुस्साहस किया। उसने बीडा उठा लिया और कहा—

"बस, सौ सवार मुझे दीजिए। सामन्तसिह का सिर लाकर मैं आपके कदमो मे डाल दूँगा।"

"तुम्हारे वीरत्व की मैं सराहना करता हूँ।" युवराज ने कहा—"साहसी को सदा सफलता मिलती है।"

नमुचि रातोरात सामन्तसिह की पल्ली मे पहुच गया। किसी को कुछ पता नही चला। सामन्तसिह अपने कोठे मे सो रहा था। नमुचि ने प्राण हथेली पर रख लिये। सोचा, या तो मारा जाऊँगा या सामन्तसिह का सिर लाकर अपनी मुराद पूरी करूँगा।

नमुचि को सफलता मिल गई। यद्यपि सोते शत्रु पर वार करना अनीति है। पर पापी जैसे मिटे, वैसे मिटाये, यह सोच नमुचि ने सोते हुए सामन्तसिह पर वार किया। उसका कटा सिर लेकर नमुचि ने तत्काल हस्तिनापुर को प्रस्थान किया। सामन्तसिह के लोगो से नमुचि के सैनिक निवटते रहे।

युवराज महापद्म ने सामन्तसिह का कटा सिर देखा तो नमुचि को गले से लगाया और प्रसन्नता से भर कर कहा—

"शत्रु का नाश कर दिया तुमने। प्रजा सुखी हो गई। अब तुम सदा मेरे दाहिने हाथ की तरह रहोगे।

"हे नमुचि! तुमने जो साहसिक कार्य किया है, इसके लिए मै तुम्हे एक वचन देता हूँ। जो चाहो, माँग लो।"

"माँगूगा, अवश्य माँगूगा।" नमुचि ने कहा—"पर आज नही। आज मुझे कुछ नही चाहिए। जब आवश्यकता होगी, तब माँगूगा।"

युवराज ने कहा—

"अपना वचन मुझे सदा याद रहेगा। जब चाहो, तब माँग लेना।"

नमुचि ने जो साहसिक कार्य किया था, इससे जनता मे भी उसकी प्रतिष्ठा बढ गई। राजा पद्मोत्तर भी उसे चाहने लगे। विष्णुकुमार को इन हलचलो से कोई मतलब नही था। वे तो अपने वैराग्य भाव मे डूबे रहते और सदा एकान्त मे रहते। जो कुछ नमुचि को उज्जयिनी मे प्राप्त नही था, वह उसने यहाँ हस्तिनापुर मे प्राप्त कर लिया। हाँ, उसने यहाँ इतनी चतुराई अवश्य दिखाई कि अपना धर्मद्वेष प्रकट नही किया। उज्जयिनी मे तो वह प्रकट नास्तिक और मिथ्यावादी था—यहाँ वह तटस्थ रहता था। बल्कि धार्मिक आयोजनो मे झूठा उत्साह भी दिखाता था।

इन्ही दिनो रथयात्रा का महोत्सव आया। वैदिक परम्परा मे भी अवतारवाद के समर्थक रथयात्रा महोत्सव मनाते है और कुछ जैन धर्मावलम्बी भी तीर्थंकरो का रथ महोत्सव मनाते है। राजा पद्मोत्तर की बडी रानी ज्वालादेवी ने अपना रथयात्रा महोत्सव मनाया। वह जैनधर्म मे आस्था रखती थी। छोटी रानी लक्ष्मी का रथ भी जगन्नाथ भगवान की सवारी के साथ राजोद्यान पहुँचा।

यथासमय दोनो रानियो के रथ लौटे और–उद्यान से निकलने वाद दोनो को ही नगरद्वार पर रुक जाना पडा। समस्या यह हुई कि किसका रथ पहले प्रविष्ट हो। दोनो ही अपनी प्रतिष्ठा ऊपर रखना चाहती थी। समस्या राजा पद्मोत्तर के पास पहुँची। उन्होने गृह-कलह को टालने के विचार से आदेश भिजवाया कि दोनो रथ उद्यान मे ही रहेगें। नगर मे कोई रथ नही आयेगा। ऐसा ही हुआ। दोनो रानियाँ वरावर रही। धर्म को प्रतिष्ठा के तराजू पर तौलना मूर्खता ही है।

नमुचि ने युवराज महापद्म को भडका दिया कि युवराज, यह तो आपकी माता का सरासर अपमान है। एक तो आपकी माता वडी है। दूसरे वे युवराज की माता है। भविष्य मे उन्ही को राजमाता होना है। धर्म की वात जाने भी दे, तो भी उनका रथ नगर मे पहले प्रविष्ट होना चाहिए था।

युवराज ने कहा—

"तुम ठीक कहते हो किन्तु पिता से विरोध करना भी बुरा है। क्योकि पिता के कार्यों मे उचित-अनुचित का विचार नही किया जाता। दूसरे उस पुत्र को भी धिक्कार है, जो माता का अपमान देखे। मैं अब यहाँ रहूँगा ही नही। अपने वल पर नया राज्य वनाऊँगा। क्या तुम मेरे साथ चलोगे ?"

"यह भी कुछ पूछने की वात है ?" नमुचि ने कहा— "आपने मुझे अपना दाहिना हाथ वनाया है तो अलग कैसे रह सकता हूँ ?"

नमुचि को लेकर महापद्म हस्तिनापुर से चला गया। उसके जाने का राजा पद्मोत्तर को वहुत दुख हुआ। उन्होने वडे पुत्र विष्णुकुमार से कहा—

"पुत्र तुम वडे हो। महापद्म का कुछ पता नही। अत' तुम ही युवराज पद सम्हालो।"

"मुझे तो उस राज्य का राजा वनना है, जो कभी विनष्ट नही होता।" विष्णुकुमार ने कहा—"इस सिंहासन पर तो अनुज महापद्म ही वैठेगा। आप प्रतीक्षा कीजिए। वह आयेगा अवश्य।"

वर्ष वीता। और भी वर्ष वीते। महापद्म का यश ऐसा फैला कि उसकी किरणे हस्तिनापुर भी आ गई। वाहर से आये दूतो ने राजा पद्मोत्तर को सवाद दिया—

"पृथ्वीनाथ! महापद्म को चक्ररत्न की प्राप्ति हुई है। वे अव चौदह रत्नो के स्वामी चक्रवर्ती महापद्म है। छह खण्ड धरा उन्होने जीत ली है।"

"घर से जाना शुभ रहा।" राजा पद्मोत्तर ने कहा—"हर कार्य के लिए एक वहाना चाहिए। मैं तो अव दीक्षा लूँगा। भाग्य से मुनि सुव्रत स्वामी हस्तिनापुर पधारे है।"

राजा ने अपने दूत द्वारा महापद्म के पास सदेश भेजा-

"पुत्र मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। मेरे इस धर्मकार्य मे सहायक वनो। तुरन्त चले आओ और अपना उत्तराधिकार सम्हालो।"

महापद्म नमुचि के साथ हस्तिनापुर लौटा। अनेक राजाओ की उपस्थिति मे महापद्म का चक्रवर्ती पद का

अभिषेक हुआ। राजपुत्र विष्णुकुमार और राजा पद्मोत्तर—दोनो ने मुनि सुव्रत स्वामी के समक्ष भागवती दीक्षा ले ली। छह खण्ड के स्वामी चक्रवर्ती महापद्म के शासन का डका बज गया।

कठोर समय का पालन करते हुए मुनि पद्मोत्तर तो पडितमरण प्राप्त करके स्वर्ग को गये। युवा मुनि विष्णु कुमार ने तपश्चर्या द्वारा अनेक लब्धियाँ प्राप्त की और आचार्य सुव्रत स्वामी से अनुमति लेकर मेरुगिरि के शिखर पर कायोत्सर्ग करने लगे।

समय बीतता रहा। कालान्तर मे मुनि सुव्रत स्वामी अपने सघ सहित हस्तिनापुर पधारे। उनकी देशना सुनने चक्री महापद्म गये और आचार्य से विनती की कि इस वार चातुर्मास यही वितायें। आचार्य ने स्वीकार किया।

नमुचि को पता चला कि आचार्य सुव्रत सघ सहित चार महीने तक यही रहेगे तो उसके तन-वदन मे आग लग गई। उसका धर्मद्वेष जाग उठा। नमुचि ने सोचा 'इसी सुव्रत के शिष्य एक लघु मुनि ने उज्जयिनी मे मेरा अपमान किया था। समस्त प्रजा के सामने मुझे नीचा देखना पडा। उसी के कारण तो मझे उज्जयिनी छोडनी पडी। खैर, अव इस पुराने वैरी सुव्रत से निवटूँगा। देखूँगा कैसे टिकता है।'

मन-ही-मन कुटिल योजना वनाते हुए नमुचि ने चक्री महापद्म से कहा—

'हे चक्रवर्तिन्! आपने मुझे एक वचन दिया था कि मैं

कुछ भी माँग लूँ। क्या वह वर-वचन आपकी स्मृति मे है ?"

"क्षत्रिय प्राण देकर भी अपने वचन का पालन करते है।" महापद्म ने कहा—"मुझे अपना वचन अच्छी तरह याद है। जब चाहो, माँग लो।"

"पृथ्वीनाथ ! मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ। अत एक महीने तक का शासन भार मुझे दीजिए। एक महीने तक शासक रहकर मैं अपने ढग से यज्ञ करूँगा। और हाँ, मेरे विरुद्ध आपसे कोई कुछ भी कहे, आप सुनेगे नही। कोई भी—यहाँ तक कि आप भी मेरे शासन-सचालन मे हस्तक्षेप नही कर सकते।"

वचनवद्ध महापद्म सिहासन से उतरे। नमुचि अव राजसिहासन पर बैठा। महापद्म महलो मे रहने लगे। वचन के लिए वहुत कुछ सहना पडता है। वचन की ही खातिर महापद्म को महीने भर तक इस वात से कोई मतलव नही था कि नमुचि स्याह-सफेद क्या करता है।

नमुचि ने यज्ञ कराया। विशाल यज्ञमण्डप मे वहुत लोग आये, पर आचार्य सुव्रत नही पहुँचे। उनसे भिडने के लिए नमुचि को वहाना मिल गया। यज्ञ की समाप्ति पर नमुचि उद्यान पहुँचा और आचार्य सुव्रत से वोला—

"तुम हमारे यज्ञ मे क्यो नही आये ?"

"वाह्य यज्ञो मे निर्ग्रन्थो की आस्था नही होती।" आचार्य सुव्रत ने कहा—"जिस तप-यज्ञ मे कर्मो की आहुति दी जाती है, वही यज्ञ हम करते है।"

"मै तुमसे वहस करना नही चाहता।" नमुचि ने

अकडकर कहा—"अपना एक आदेश देने आया हूँ। चूकि तुम हमारे यज्ञ मे नही आए, इसलिए यहाँ के शासक की हैसियत से मैं तुम्हे आदेश देता हूँ कि कल तक यह उद्यान खाली करके मेरे राज्य से वाहर चले जाओ।"

"लेकिन यह कैसे सम्भव है ?" आचार्य सुव्रत ने कहा—"चातुर्मास पूरा होने से पूर्व हम विहार कैसे कर सकते है। आदेश देते समय आपको हमारी श्रमणचर्या का विचार भी तो करना चाहिए।"

"मै कुछ भी सुनना नही चाहता।" नमुचि ने कहा—"कल एक भी साधु मुझे नही दीखना चाहिए वरना एक-एक को मरवा दूँगा।"

यह कह दुष्ट नमुचि महलो को वापस आ गया। इधर सघ के सम्मुख धर्मसकट देख आचार्य ने समस्त श्रमणो से कहा—

"नमुचि मानेगा नही। सघ के अस्तित्व का प्रश्न है। धर्म की मर्यादा रखनी है। आखिर चक्रवर्ती के षट्खड की सीमा त्याग कर हम कहाँ जायेगे ? वोलो, क्या करना उचित है।"

एक मुनि वोले—

"इस सकट से आपके सुशिष्य मुनि विष्णुकुमार ही उवार सकते है। वे अनेक लब्धियो के धारक है। वे ही नमुचि को पाठ पढा सकते है।"

"लेकिन वे तो वहुत दूर है।" आचार्य ने कहा—"मेरुचूला तक सदेश कैसे पहुँचे, क्योकि जो कुछ होना है, आज रातभर मे ही होना है।"

एक मुनि बोले—

"आकाश-गमन की अर्द्ध लब्धि मुझे प्राप्त है। अर्थात् मैं इधर से आकाश मार्ग द्वारा मुनि विष्णुकुमार के पास जा तो सकता हूँ पर उधर से लौट नही सकता।"

"बस, फिर तो काम बन गया।" आचार्य सुव्रत ने कहा—"इधर से तुम जाओ और सब वृत्तान्त सुनाकर विष्णुकुमार को मेरा आदेश देना कि तुरन्त चला आये। उधर से वह अपनी लब्धि से तुम्हे भी साथ ले आयेगा।"

गुरु आज्ञा प्राप्त कर आकाशचारी मुनि तुरन्त मेरु शिखर पर पहुँच गए और कायोत्सर्ग मे लीन मुनि विष्णु कुमार को नमुचि की समस्त कुटिलता बताकर कहा—

"गुरुदेव सुव्रत स्वामी का आपके लिए आदेश है कि धर्मसघ की रक्षा के लिए आप तुरन्त चले।"

मुनि विष्णुकुमार उक्त श्रमण को साथ लेकर वैक्रिय लब्धि द्वारा तुरन्त सुव्रत स्वामी के पास आ गये और गुरु को प्रणाम कर सब बाते पुन समझी तथा सीधे नमुचि की राजसभा मे पहुँचे।

मुनि विष्णकुमार एक तो चक्रवर्ती महापद्म के बडे भाई थे। दूसरे वे लब्धिधारी मुनि थे। इस नाते समस्त राजसभा उनके स्वागत मे उठ खडी हुई। पर महा-अभिमानी नमुचि राजसिहासन पर बैठा ही रहा। पर मुनि तो मान-सम्मान से परे थे। अपने असम्मान का उन्होने किंचित् विचार नही किया और नमुचि से ओजपूर्ण वाणी मे बोले—

"नमुचि! क्या तू श्रमणचर्या से बिल्कुल अनभिज्ञ

है ? तुझे मालूम होना चाहिए कि चातुर्मास पूरा होने से पहले विहार नही किया जा सकता। अत: पहले सघ के निवास की अन्य व्यवस्था करो, तब उद्यान खाली करने का आदेश देना।"

मुनि विष्णुकुमार की वात सुन नमुचि कुटिल हँसी हँसा और वोला—

"मैं अपना आदेश तो वापस नही ले सकता, पर तुम जैसे याचक को खाली वापस भी नही भेज सकता। आखिर तो तुम चक्रवर्ती के वडे भाई हो। तुम यहाँ तक आये हो, इसलिए मैं तुम्हे तीन पग भूमि दे सकता हूँ। इसी मे अपने सघ की गुजर करो।"

"ठीक है मुझे तीन पग भूमि ही दे।" मुनि विष्णुकुमार वोले—"तुझे पता चल जाएगा कि मैं कैसा याचक हूँ ?"

यह कह मुनि विष्णुकुमार ने अपना शरीर लाख योजन तक वढा लिया। उनके इस विराट रूप को देख कर सभा भयभीत हो गई। नमुचि की आँखे पथरा गई। मुनि का सिर आकाश को पार कर गया था।

मुनि ने अपना एक पैर समुद्र की पूर्व मेखला पर रखा और दूसरा समुद्र की पश्चिम मेखला पर। वडी भयकर स्थिति वन गई। समस्त पर्वत कॉपने लगे। सागरो मे खलवली मच गई। धरती अपने अचला नाम को त्याग चलायमान हो गई। देवगण भी भयभीत हो गये। मानो प्रलय काल ही आ गया हो।

मुनि विष्णुकुमार का यह विराट् क्रोधाविष्ट रूप देखकर सर्वत्र भयकर कोलाहल मच गया। चक्री महा-

पद्म भी महलो से निकलकर मुनि के समक्ष आ गया। मुनि की तेजस्वी विशाल आँखे जैसे दुष्ट नमुचि को महा-काल का रूप दिखाई देने लगी, वह वृक्ष के सूखे पात की तरह कपकपाने लगा। उसका चेहरा काला पड गया। आँखे निस्तेज ! उसे तो लगा, बस, आज ससार मे उसे मृत्यु से बचाने वाला कोई भी नही है। मृत्यु के भय से भयभीत नमुचि कभी मुनि के चरणो मे झुकता, कभी चक्री महापद्म की तरफ देखता।

चक्री राजा महापद्म ने, देवो ने तथा श्रमण सघ ने मुनि विष्णुकुमार को क्रोध शान्त करने की प्रार्थना की, विनीत स्वर मे स्तुति की और नमुचि के दुष्कृत्य की घोर निदा की। नमुचि भी बार-बार आँसू बहाकर क्षमा की प्रार्थना करने लगा।

धीरे-धीरे मुनि विष्णुकुमार का क्रोध शात हुआ। अपना वैक्रिय रूप सवरण किया। महापद्म चक्रवर्ती ने दुष्ट नमुचि को प्रताडना दी, श्रमण सघ से क्षमा मागी और वधिको के आदेश दिया—जाओ ! इस दुष्ट नमुचि का नाश कर डालो। तब सघ के आचार्य व अन्य श्रमण-श्रावको ने मुनि विष्णुकुमार से तथा चक्रवर्ती महापद्म से प्रार्थना करके नमुचि को अभय दिलवाया।

अत श्रमण सघ की प्रार्थना पर, मुनि विष्णुकुमार के सकेतानुसार राजा महापद्म ने दुष्ट नमुचि की भर्त्सना व प्रताडनाकर देश-निकाला दे दिया।

वस्तुत मुनि विष्णुकुमार ने युग के सामने एक

उदाहरण उपस्थित कर दिखाया था। इसके बाद उन्होने घोर तप करके केवलज्ञान प्राप्त किया और मुक्त हुए।

समस्त कथा सुनाने के बाद श्रेष्ठिपुत्र धनमित्र ने अपने पिता कुंचिक से कहा—

"पिताजी ! ये मुनि मुनिपति भी मुनि विष्णुकुमार की तरह अनेक लब्धियो के धारक है। नाना दृष्टान्तो से आपने इन पर झूठा आरोप लगाया है। यदि इनको क्रोध आ गया तो ये हमे भी पाठ पढायेगे।

"पिताजी ! लब्धियाँ हर मुनि को प्राप्त नही हो जाती। आचार्य सुव्रत के सघ मे भी मुनि विष्णुकुमार ही लब्धिधारी थे। लब्धि के बल पर ये मुनि जो न कर दे सो थोडा है। ये आकाश-पाताल को एक कर सकते है। आचार्य आर्यरक्षित स्वामी के दो शिष्य तो ऐसे लब्धि-धारी थे कि एक जहाँ जाता, वहाँ घी का अभाव नही रहता और दूसरे को वस्त्रो की कमी नही रहती थी।"

कुंचिक ने कहा—

"पुत्र ! आर्यरक्षित स्वामी के शिष्यो के विषय मे भी मुझे बताओ कि उनको कैसी लब्धियाँ प्राप्त थी ?"

"पिताजी ! आर्यरक्षित स्वामी के दो शिष्य थे—एक घृतपुष्यमित्र और दूसरा वस्त्रपुष्यमित्र।" कुंचिक के पुत्र ने कहा—"इन दोनो ने लब्धिबल से अनेक अपौरुषेय कार्य किये थे।"

धर्नामित्र अपने पिता कुंचिक को घृतपुष्यमित्र और वस्त्रपुष्यमित्र का दृष्टान्त सुनाने लगा। □

३१ ★ ★ ★

आर्यरक्षित स्वामी के एक शिष्य को एक वार ऐसे देश मे जाना पडा, जहाँ घी का अभाव था। अत उन्हे एक दिन भी भिक्षा मे घी नही मिला। श्रमण को घी मिले तो ठीक न मिले तो ठीक। पर आचार्य के इस शिष्य ने सोचा कि मुझे घी मिले या न मिले, पर जहाँ मै जाऊँ, वहाँ घी की प्रचुरता रहे। इस तरह उन्होने घृतोपलब्धि प्राप्त कर ली और फिर इनका नाम घृत-पुष्यमित्र पड गया।

अवन्ति आदि देशो मे प्रायः घी का अभाव रहता, यहाँ तक कि कोई निर्धन ब्राह्मणी अपने प्रसव समय के लिए बूँद-बूँद घी इकट्ठा करती। पर ऐसे देश-प्रदेशो मे भी जब मुनि घृतपुष्यमित्र जाते तो घी की प्रचुरता हो जाती। हर घर मे घी के मटके भर जाते। सारे सघ के लिए प्रचुर मात्रा मे घी मिल जाता। यह सब घृतलब्धि का प्रताप था।

इसी तरह आचार्य आर्यरक्षित स्वामी के दूसरे शिष्य थे, वस्त्रपुष्यमित्र। ये जहाँ कही भी जाते, वहाँ वस्त्रो की प्रचुरता हो जाती। जहाँ दरिद्र, अनाथ और चिथडे पहनने वाले लोग रहते, वहाँ भी वस्त्रपुष्यमित्र के पधा-रने पर वस्त्रो के ढेर लग जाते।

धनमित्र ने कुचिक से कहा—

"पिताजी ! ऐसे लब्धिधारी मुनियो को किसी के धन की क्या आवश्यकता है। आप इन मुनि को तनिक भी संतापित मत कीजिए।

"पिताजी ! वैभवपूर्ण राज्य को तिनके की तरह त्यागने वाले ये मुनि आपके स्वर्णपिण्ड को क्यो लेगे ? आपने अनेक दृष्टान्त सुनाकर इन्हे कृतघ्न और चोर सिद्ध करने का प्रयास किया। पर इनकी क्षमाशीलता कैसी है कि इन्होने तनिक भी बुरा नही माना।

"पूज्य तात ! लेकिन यह कहावत तो आपने सुनी होगी कि 'अतिशय रगड करे जो कोई, अनल प्रकट चन्दन ते होई।' अर्थात् यदि आप इन पर आरोप लगाते ही जाएँगे तो मुनि कठ अथवा मुनि विष्णुकुमार की तरह इन्हे भी क्रोध आ सकता है...।"

कुचिक ने कहा—

"जो बात ये मुनि अब तक कह रहे थे, वही तू भी कहता है। पर मेरी आँखे तो धोखा नही खा सकती। जिस समय मैंने धन गाडा था, उस समय यही एक देखने वाले थे। जब इन्होने मेरा धन नही लिया तो किसने लिया है ?"

"वह धन मैंने लिया है।" धनमित्र ने कहा—"जब आप धन गाड रहे थे, तब मैं छिपकर देख रहा था। आप जान नही पाये और धन मैंने ले लिया। आप मुनिश्री

को ही चोर समझते रहे। मेरे साथ चले और चलकर अपने धन को सम्हाले।"

"यह तू क्या कहता है पुत्र !" कुचिक व्याकुल हो उठा—"हाय, मैंने व्यर्थ ही मुनि को कटुवचन कहे। मैं वडा पापी हूँ।"

यह कह कुचिक मुनि मुनिपति के चरणो मे गिर पडा। उसने आँसुओ से मुनि-चरणो को धो दिया। पश्चात्ताप से मनुष्य कितना हल्का हो जाता है, इसे अव कुचिक ही जानता था। मुनि ने कुचिक को धर्मदेशना दी और अन्त मे कहा—

"मुझे तुम पर न पहले रोष था और न अव है। रोष किस वात का ? तुमने मेरा क्या विगाडा ? तुम्हे एक भ्रम था, वह मिट गया। पर एक भ्रम अभी वाकी है। उसे भी मिटा डालो।"

"अव कौन-सा भ्रम वाकी है ?" कुचिक ने कहा—"वात-मे-वात कहते-सुनते मेरा वहुत वडा भ्रम मिट गया।"

मुनि मुनिपति वोले—

"धन मे आनन्द है, धन मे सुख है और अन्त मे धन ही काम मे आयेगा, यह भ्रान्ति सारे जगत को है, तुमको भी है। इसी भ्रम और धनासक्ति के कारण तुम इतने विचलित हुए कि तुम्हारी विचार करने की शक्ति कुठित हो गई और तुम मुझ पर मिथ्या आरोप लगाते रहे।

"कुचिक ! जिसने आत्म-धन को पहचान लिया उसके लिए सव मिट्टी है। आनन्द आत्मा मे है। शक्ति भी आत्मा मे है और ज्ञान भी आत्मा मे ही है। अनन्त-सुख का आकाक्षी आत्मदर्शन करता है। मेरे चातुर्मास का क्या तुम्हे इतना भी लाभ न मिला कि वाह्य सुख की भ्रान्ति को मिटा सको और आत्मधन को पहचानो।"

मुनि मुनिपति ने कुचिक को ऐसी ओजभरी देशना दी कि कुचिक के नेत्र खुल गये। सव अँधियारा मिट गया। वह प्रतिबुद्ध हो गया। उसने करवद्ध होकर कहा—

"हे तरण तारण ! अव मुझे अपनी शरण दीजिए। ससार की असारता अव मुझे स्पष्ट भास रही है। मै दीक्षा लूँगा। मुझे दीक्षा की अनुमति दीजिए।"

मुनि बोले—

"जैसा करने मे तुम्हारी आत्मा सुख माने वैसा ही करो, पर धर्मकार्य मे विलम्व मत करो।'

कुचिक ने अपने पुत्र धनमित्र को सव गृह भार सौपा। वाणिज्य-व्यापार सौप दिया और दीक्षा अगीकार करके मुनि वन गया।

पिता-मुनि कुचिक का धनमित्र ने दीक्षा महोत्सव मनाया और स्वय श्रावक के वारह व्रत ग्रहण किये। अवन्ती के लोग मुनि कुचिक की वन्दना करने उद्यान पहुँचे। विहार करने से पूर्व मुनि मुनिपति ने अवन्ती

वासियो को देशना दी और सुशिष्य मुनि कु चिक को लेकर अन्यत्र विहार किया ।

मुनि कु चिक ने कठोर तपश्चर्या की। गुरु-सेवा, शास्त्राध्ययन आदि के साथ विधिवत सयम का पालन करते हुए कु चिक मुनि ने गुरुदेव मुनि मुनिपति के साथ अनशन और मलेखना व्रत किया तथा 'सुमन माल जिमि कठ ते गिरत न जानइ नाग' की तरह सहज ही प्राण त्याग दिये और प्रथम देवलोक प्राप्त किया ।

मुनि मुनिपति और मुनि कु चिक दोनो ने ही प्रथम देवलोक प्राप्त किया था । देवायुष्य पूर्णकर दोनो महा-विदेहक्षेत्र मे अवतरित होकर पुन सयम का वरण करगे और शिवलोक के वासी वनेगे । □